समन्वय

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति ।

अष्टम वर्ष

(सौर माघ सं० १९८५—सौर पौष सं० १९८६)

ई० सन् १९२९ ।

—※—

समन्वय कार्य्यालय ।

१८२ ए, मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट, कलकत्ता ।

वार्षिक मूल्य ३)] [प्रति संख्या ।-)

आठवाँ वर्ष की विषय-सूची ।

समन्वय

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥
—गीता

वर्ष ८] सौर माघ, संवत् १९८५ [अङ्क १

नव वर्ष

उस करुणामय की असीम कृपा से समन्वय अपने जीवन के सात वर्ष पूरे कर इस अंक से आठवें वर्ष में नई आशाओं और नई उमंगों के साथ पदार्पण कर रहा है। इस समय उस परम पिता परमेश्वर को प्रणाम करना और उसके जीवों के प्रति प्रेम प्रदर्शित करना हमारा आवश्यक कर्तव्य है। हमारी प्रार्थना है कि उस विश्व-नियामक के नियन्त्रण में मानव समाज परस्पर सहानुभूति और प्रेम प्रकाशित करता हुआ, सत्य और सेवा के मार्ग पर अग्रसर होता रहे। साथ ही इस अवसर पर समन्वय के दयालु पाठकों को भी धन्यवाद देना हमारा परम कर्तव्य है, जिनकी सहायता और सहानुभूति से वह अपने जीवन के सात वर्ष व्यतीत कर सका और जिनके सहारे उसे अपने मार्ग पर अग्रसर होने की आशा ही नहीं दृढ़ विश्वास भी है।

अपने इस छोटे से जीवन काल में समन्वय ने अपने कृपालु पाठकों के सामने उस महान् भारतीय आदर्श को रखने में कोई बात उठा नहीं रखी, जिस आदर्श को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये भारतीयों ने कई शताब्दियों से निरन्तर प्रयत्न किया है। वर्तमान भारत दो परस्पर विरोधिनी सभ्यताओं के बीच चल रहा है। एक ओर उसकी प्राचीन

स्वामी विविदिशानन्दका अमेरिका प्रयाण।

स्वामी विविदिशानन्द गत ७ वीं जून को कलकत्ते से संयुक्त राज्य अमेरिका के लिये रवाना हो गये। अनुमान है कि अभी आप पोर्टलैण्ड ओरिगन की वेदान्त सोसाइटी के अध्यक्ष पद पर काम करेंगे। इस समय वहाँ पर स्वामी प्रभवानन्द हैं, जो आपके पहुंचनेके बाद सेंट लूइस में प्रचार कार्य का दृढ़ संगठन करने के लिये चले जावेंगे। कारण आपने ही वहाँ प्रचार कार्य का सूत्रपात किया था। स्वामी विविदिशानन्द सरल प्रकृति के जनप्रिय संन्यासी हैं। आप बड़े ही कार्य-कुशल और मिलनसार हैं। हमें दृढ़ विश्वास है कि आपके प्रभावोत्पादक व्यक्तित्व का अमेरिका निवासियों के ऊपर खासा प्रभाव पड़ेगा, जिससे प्रचार कार्य में पर्याप्त सहायता मिलेगी। अपने प्रस्थान के पूर्व आप राजकोट काठियावाड़ के रामकृष्ण आश्रम के अध्यक्ष थे। इसके पूर्व आप मायावतीके अद्वैत आश्रम में ६ वर्ष तक रहे थे। आपने दो वर्षों तक बड़ी योग्यता के साथ प्रबुद्ध-भारत (मासिक पत्रिका) का सम्पादन किया था। हम आपको इस नये कार्यक्षेत्र में सफलीभूत देखना चाहते हैं।

स्वामी माधवानन्द का शुभागमन।

स्वामी माधवानन्दजी अमेरिका से युरोप होते हुए २४ जून को भारत लौट आये। आप दो वर्षतक सान् फ्रान्सिस्को हिन्दू मन्दिर में वेदान्त के सार्वभौमिक धर्म का बड़ी योग्यता से उपदेश देते रहे। आप वहां हिन्दू मन्दिर के अध्यक्ष थे। आपके आदर्श व्यक्तित्व की अमिट छाप वहां के मन्दिर से सम्बन्ध रखनेवालों के हृदय पर पड़ी है। इस समय भारत में आपकी अधिक आवश्यकता होनेके कारण ही आप इतनी जल्दी यहां बुला लिये गये हैं। शीघ्र ही श्रीरामकृष्ण मिशन और बेलूड़ मठ सम्बन्धी किसी महत्त्वपूर्ण कार्य का भार आपको सौंपा जायगा। हम इस अवसर पर आपका हार्दिक स्वागत करते हैं।

—:o:—

समन्वय

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥ —गीता।

वर्ष ८ } सौर भाद्रपद, सम्वत् १९८६ { अंक ८

श्रीरामकृष्णवचनामृत।

(४)

एक भक्त। आपके ये सब भाव तो नजोग के लिये हैं, तो हम लोगों को क्या करना होगा?

श्रीरामकृष्ण। ईश्वर-प्राप्ति के लिये तीव्र वैराग्य चाहिये। ईश्वर के मार्ग का जिसे विरोधी समझो, उसे उसी वक्त छोड़ दो। पीछे कर लेंगे, यह सोचकर उसे डाल रखना उचित नहीं। कामिनी और काञ्चन ईश्वर के मार्ग के विरोधी हैं; उनसे मन को हटा लेना चाहिये।

"धीमे तिताले पर चलते रहे तो न होगा। एक आदमी गमछा कन्धे पर रखे नहाने जा रहा था। उसकी स्त्री बोली, तुम किसी काम के नहीं हो; उम्र बढ़ रही है, अब भी यह सब तुम न छोड़ सके। मुझे छोड़कर तुम एक दिन भी नहीं रह सकते; परन्तु अमुक को देखो, वह कितना त्यागी है।

स्वामी। क्यों उसने क्या किया?

स्त्री। उसकी सोलह स्त्रियां हैं; उसने एक एक करके सबको छोड़ दिया। तुम कभी त्याग न कर सकोगे।

स्वामी। एक एक करके त्याग। अरी पगली, वह त्याग हरगिज न कर सकेगा। जो त्याग करता है, वह क्या कभी जरा-जरा-सा त्याग करता है ?

स्त्री (हँसकर)। फिर भी वह तुमसे अच्छा है।

स्वामी। अरी, तू नहीं समझी। उसका काम त्याग करना नहीं, त्याग मैं करूंगा, यह देख मैं चला।

"तीव्र वैराग्य यह है। ज्यों ही विवेक आया कि उसी वक्त उसने त्याग किया। गमछा कन्धे पर डाले हुए ही वह चला गया। संसार का काम ठीक कर जाने के लिये भी नहीं आया। घर की ओर एक बार मुड़कर उसने देखा भी नहीं।

"जो त्याग करेगा, उसमें मन का बल खूब होना चाहिये। डाका मारने का भाव, डाका डालने से पहले डाकू जिस तरह किया करते हैं—मारो, लूटो, काटो।

"तुम लोग और क्या करोगे ?—उनकी भक्ति, कुछ प्रेम प्राप्त कर दिन पार करते रहना। कृष्ण के चले जाने पर यशोदा पागल की तरह श्रीमती के पास गई। उन्हें सन्तप्त देख कर श्रीमती ने आद्याशक्ति के रूप से उन्हें दर्शन दिया। कहा, 'मां मुझसे वर की प्रार्थना करो।' यशोदा ने कहा, 'अब और क्या वर लूँ ! यह कहो कि मन, वाणी और कर्म से कृष्ण की सेवा कर सकूँ। इन आंखों से उसके भक्तों के दर्शन हों, जहां जहां उसने लीला की है, ये पैर वहां वहां जा सकें, ये हाथ उसकी और उसके भक्तों की सेवा करें, सब इन्द्रियां उसीके काम में लगी रहें।"

यह कहते ही कहते श्रीरामकृष्ण को भावावेश हो रहा है। एका-एक आप ही आप कह रहे हैं—'संहारमूर्ति काली या नित्यकाली !'

बड़े कष्ट से श्रीरामकृष्ण ने भाव का वेग रोका। उन्होंने कुछ पानी पीया। यशोदा की बात फिर कहने जा रहे हैं कि महेन्द्र

मुखर्जी आ पहुंचे। ये और उनके छोटे भाई श्रीयुत प्रिय मुखर्जी अभी थोड़े ही दिनों से श्रीरामकृष्ण के पास आने जाने लगे हैं। महेन्द्र के मयदा की कल और दूसरे व्यवसाय भी हैं। इनके भाई इञ्जिनियर का काम करते थे। इनका काम कर्मचारी सँभालते हैं, इन्हें यथेष्ट अवसर है। महेन्द्र की उम्र छत्तीस-सैंतीस की होगी और इनके भाई की उम्र चौंतीस-पैंतीस की। ये केदेटी मौजे में रहते हैं। कलकत्ते के बागबाजार में भी इनका एक मकान है। वहीं सब लोग रहते है। इनके साथ एक नवयुवक आया जाया करते हैं, भक्त हैं, नाम हरि है। हरि का विवाह तो हो चुका है, परन्तु श्रीरामकृष्ण पर ये बड़ी भक्ति रखते हैं। महेन्द्र बहुत दिनों से दक्षिणेश्वर नहीं गये। हरि भी नहीं गये,—आज आये हैं। महेन्द्र ने भूमिष्ठ होकर श्रीरामकृष्ण को प्रणाम किया।

श्रीरामकृष्ण। क्यों जी, इतने दिनों तक दक्षिणेश्वर क्यों नहीं आये ?

महेन्द्र। जी, मैं केदेटी गया था, कलकत्ते में नहीं था।

श्रीरामकृष्ण। क्यों जी, न तो तुम्हारे लड़के-बच्चे हैं, न किसी की नौकरी करते हो, फिर भी तुम्हें अवकाश नहीं रहता !

भक्त अब चुप हैं। महेन्द्र का चेहरा उतर गया।

श्रीरामकृष्ण (महेन्द्र से)। तुम्हें मैं इस लिये कहता हूं कि तुम सरल और उदार हो—ईश्वर पर तुम्हारी भक्ति है।

महेन्द्र। जी, आप तो मेरे भले के लिये ही कह रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण (सहास्य)। और यहां आकर कुछ पूजा भी नहीं चढ़ानी पड़ती। यदु की मां ने इसपर कहा—'दूसरे साधू बस लाओ लाओ' किया करते हैं। बाबा, तुममें यह बात नहीं है। विषयी आदमियों का जी ही निकल आता है अगर उन्हें गांठ का पैसा खर्च करना पड़ता है। एक जगह नाटक हो रहा था। एक आदमी को बैठ-कर सुनने की बड़ी इच्छा थी। उसने झांककर देखा, तो उसे मालूम

हुआ कि जो कोई बैठना चाहता है, उससे टिकट के दाम लिये जाते हैं, फिर क्या वहां से चलता बना। एक दूसरी जगह नाटक हो रहा था, वह वहां गया। पूछने पर मालूम हुआ, वहां टिकट नहीं लगता था। वहां बड़ी भीड़ हुई थी। वह दोनों हाथों से भीड़ हटाकर बीच महफिल में पहुंचा। वहां अच्छी तरह जमकर मूँछों पर ताव दे-देकर सुनने लगा। (सब हँसते हैं)।

"और तुम्हारे लड़के बच्चे भी नहीं हैं कि कहें, मन दूसरी ओर चला जायगा। एक डिप्टी है, आठ सौ तनख्वाह पाता है। केशव सेन के यहां नाटक देखने गया था। मैं भी गया था। मेरे साथ राखाल तथा और भी कई आदमी गये थे। मैं जहां नाटक देखने के लिए बैठा था, वहीं मेरी बगल में वे लोग भी बैठे हुए थे। उस समय राखाल उठकर जरा कहीं बाहर गया। डिप्टी साहब वहीं आकर डट गये और राखाल की जगह पर उसने अपने छोटे बच्चे को बैठाया। मैंने कहा, यहां मत बैठाइये मेरी ऐसी अवस्था है कि जो कोई जैसा कहेगा, मुझे करना होगा। इसीलिये मैंने राखाल को वहां बैठाया था। जब तक नाटक हुआ, डिप्टी बराबर अपने बच्चे से बात चीत करता रहा। साले ने एकबार भी थियेटर नहीं देखा और मैंने सुना है वह बीबी का गुलाम है। उसके इशारे पर उठता-बैठता है, और एक नकटे बन्दर की शक्ल के बच्चे के लिये इतना प्यार! × × × तुम ध्यान धारणा करते हो न ?"

महेन्द्र। जी कुछ कुछ करता हूं।

श्रीरामकृष्ण। कभी कभी जाया करो।

महेन्द्र (सहास्य)। जी, कहां कैसी गिरह पड़ी हुई है, आप जानते ही हैं। जरा देखियेगा।

श्रीरामकृष्ण (हंसकर)। पहले जाया तो करो।—तब न दाब दबा कर देखूंगा कहां गिरह है,—कहां क्या ? जाते क्यों नहीं ?

महेन्द्र। आज कल काम से फुरसत नहीं मिलती। तिसपर कभी कभी केदेटी के मकान का इन्तजाम करना पड़ता है।

श्रीरामकृष्ण (महेन्द्र से, भक्तों की ओर इशारे से बतला कर)। क्या इनके घर-द्वार नहीं है ? या काम काज नहीं है ? ये किस तरह आया करते हैं ?

"(हरि से) तू क्यों नहीं आता ? तेरी बीबी आई है न ?"

हरि। जी नहीं।

श्रीरामकृष्ण। तो तू क्यों भूल गया ?

हरि। जी, मैं बीमार हो गया था।

श्रीरामकृष्ण (भक्तोंसे)। हां दुबला हो गया है। इसे भक्ति तो कम है नहीं, भक्ति की दौड़ का हाल फिर क्या पूछना ? —उत्पाती भक्ति है। (हँस रहे हैं)

श्रीरामकृष्ण एक भक्त की स्त्री को 'हाबी की मां' कह कर पुकारते थे। 'हाबी की मां' के भाई आये हुए हैं, कालेज में पढ़ते हैं, उम्र अन्दाजन बीस साल की होगी। वे क्रीकेट खेलनेके लिये जायंगे, इसलिये उठे, उनके साथ उनके छोटे भाई भी उठे, ये भी श्रीरामकृष्ण के भक्त हैं। कुछ देर के बाद द्विज के लौट आने पर श्रीरामकृष्ण ने पूछा—तु नहीं गया ?

किसी भक्त ने कहा, ये गाना सुनेंगे, इसीलिये चले आये हैं। आज ब्राह्म भक्त श्री त्रैलोक्य का गाना होगा। पल्टू भी आ गये। श्रीरामकृष्ण कहते हैं—कौन—अरे! पल्टू ?

एक और नवयुवक भक्त आये। इनका नाम पूर्ण है। श्रीरामकृष्ण के कई बार बुलवाने से तो ये आये हैं। घरवाले इन्हें आने ही नहीं देते थे। मास्टर जिस स्कूल में पढ़ाते हैं, ये उसकी पांचवीं कक्षा में पढ़ते हैं। इन्होंने श्रीरामकृष्ण को भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया। श्रीरामकृष्ण उन्हें अपने पास बैठा कर धीरे धीरे बात चीत कर रहे

हैं। मास्टर पास बैठे हुए हैं। दूसरे भक्त दूसरे ही विचार में डूबे हुए हैं। गिरीश एक ओर बैठे हुए केशव-चरित पढ़ रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण (पूर्ण से) यहां आया करो।

गिरीश (मास्टर से)। यह लड़का कौन है ? मास्टर (विरक्ति भाव से) लड़का है और कौन है ?

गिरीश। लड़का है यह तो देख ही रहा हूं।

मास्टर डरे कि चार आदमी जान गये और लड़के के घर तक खबर फैली तो उसके हक में अच्छा न होगा, और इससे मास्टर पर दोषारोपण होता है। इसी लिये बच्चे के साथ श्रीरामकृष्ण धीरे धीरे बात चीत कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण। जो कुछ मैंने बतलाया था, सब करते जाना।

बच्चा। जी हां।

श्रीरामकृष्ण। स्वप्न में कुछ देखते हो ?—अग्नि-शिखा, जलती हुई मशाल ? —सुहागिन स्त्री ? —श्मशान ? —यह सब देखना बहुत अच्छा है।

बच्चा। आपको देखा है, आप बैठे हुए कुछ कह रहे थे।

श्रीरामकृष्ण। क्या ? —उपदेश ? —अच्छा क्या सुना, एक कहो तो जरा।

बच्चा। याद नहीं है।

श्रीरामकृष्ण। नहीं याद है तो नहीं सही, यह बहुत अच्छा है। तुम्हारी उन्नति होगी। मुझपर आकर्षण है न ?

कुछ देर बाद श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं—"क्या वहां नहीं जाओगे ?" यानी दक्षिणेश्वर में। बच्चा कह रहा है, मैं यह नहीं कह सकूंगा।

श्रीरामकृष्ण। क्यों ? वहां तुम्हारा कोई आत्मीय है न ?

बच्चा। जी हां, परन्तु वहां जाने की सुविधा नहीं है।

गिरीश केशव-चरित पढ़ रहे हैं। ब्राह्म समाज के श्रीयुत त्रैलोक्य ने यह पुस्तक लिखी है। इसमें लिखा है, पहले परमहंस देव संसार से विरक्त थे, परन्तु केशव से मिलने के बाद उन्होंने अपना मन बदल दिया है। अब परमहंस देव कहते हैं, संसार में भी धर्म होता है। इसे पढ़ कर किसी किसी भक्त ने श्रीरामकृष्ण से यह बात कही है। भक्तों की इच्छा है कि त्रैलोक्य के साथ इस विषय पर बात चीत हो। श्रीरामकृष्ण को पुस्तक पढ़ कर यह बात सुनाई गई थी।

गिरीश के हाथ में पुस्तक देख कर श्रीरामकृष्ण, गिरीश, मास्टर, राम और दूसरे भक्तों से कह रहे हैं—"वे लोग वही लेकर हैं, इसी लिये संसार-संसार रट रहे हैं। कामिनी और कांचन के भीतर हैं न ! उन्हें पा लेने पर ऐसी बात नहीं निकलती। ईश्वर का आनन्द मिलता है तो संसार काकविष्ठावत् जान पड़ता है। मैं पहले सबसे किनारा-कशी कर गया था। —विषयी लोगों का साथ तो छोड़ा, बीच में भक्तों का सङ्ग भी छोड़ दिया था। देखा, सब पटापट कूच कर जाते हैं (मर जाते हैं) और सुन कर मेरा कलेजा दहलता था—इस समय तो फिर भी आदमियों में रहता हूं।

(५)

गिरीश घर चले गये। फिर आवेंगे।

श्रीयुत जयगोपाल सेन के साथ त्रैलोक्य आ गये। उन्होंने श्रीरामकृष्ण को प्रणाम करके आसन ग्रहण किया। श्रीरामकृष्ण उनसे कुशल प्रश्न कर रहे हैं। छोटे नरेन्द्र ने आकर भूमिष्ठ हो प्रणाम किया। श्रीरामकृष्ण ने कहा। क्यों रे, तू शनिवार को तो फिर न आया ? अब त्रैलोक्य का गाना होगा।

श्रीरामकृष्ण। अहा ! उस दिन तुमने आनन्दमयी माता का गाना गाया, कितना सुन्दर गाना था ! —और सब आदमियों के गाने

अलोने लगते हैं। उस दिन नरेन्द्र का गाना भी [illegible] नहीं [illegible]। ऐसे ही (बिना ओरेज के) जरा कहीं गाना गा सके।

त्रैलोक्य गा रहे हैं "जय शचीनन्दन"।

श्रीरामकृष्ण मुँह धोने के लिये जा रहे हैं। [illegible] [illegible] व्याकुल भाव से बैठी हुई थीं। उनके पास श्रीरामकृष्ण दर्शन देने के लिये जायेंगे। त्रैलोक्य का गाना हो रहा है।

श्रीरामकृष्ण कमरे में लौट कर त्रैलोक्य से कह रहे हैं—[illegible] आनन्दमयी का गाना,—त्रैलोक्य गा रहे हैं,—

"माता, मनुष्य सन्तानों पर तुम्हारी कितनी प्रीति है! जब इसकी याद आती है, तब दोनों आँखों से प्रेम की धारा बह चलती है। मैं जन्म से ही तुम्हारे श्रीचरणों में अपराधी हूँ, फिर भी तुम मेरे मुख की ओर प्रेम पूर्ण नेत्रों से देखकर मधुर स्वर से पुकार रही हो। जब यह बात याद आती है, तब दोनों नेत्रों से प्रेम की धारा बह चलती है। तुम्हारे प्रेम का भार अब मुझ से ढोया नहीं जाता। जी विकल हो कर रो उठता है, तुम्हारे स्नेह को देख कर हृदय [illegible] हो जाता है। माँ, तुम्हारे श्रीचरणों में कब से शरणागत हूँ।"

गाना सुनते ही छोटे नरेन्द्र गम्भीर ध्यान में मग्न हो गए हैं,—शरीर काष्ठवत् जान पड़ता है। श्रीरामकृष्ण मास्टर से कह रहे हैं, देखो देखो, कितना गम्भीर ध्यान है। बाहरी संसार का ज्ञान बिलकुल नहीं रहा।

गाना समाप्त हो गया। श्रीरामकृष्ण ने त्रैलोक्य से [illegible] [illegible] 'करे' गाने के लिये कहा। राम ने कहा, कुछ हरिनाम होना चाहिये। त्रैलोक्य गा रहे। 'मन एक बार हरि कहो।'

मास्टर धीरे धीरे कह रहे हैं—'निताई-गौर तुम दोनों भाई [illegible]' यह गाना सुनने की श्रीरामकृष्ण को भी इच्छा है। त्रैलोक्य के साथ भक्त गण भी मिल कर गा रहे हैं। श्रीरामकृष्ण भी साथ गाते [illegible]।

यह गाना समाप्त होने पर दूसरा गाना शुरू किया गया। —"हरि नाम लेते हुए जिनकी आँखों से आँसू बह चलते हैं, वे दोनों भाई आये हुए हैं। जो मार खा कर भी प्रेमदान करने के लिये तैयार रहते हैं, वे दोनों भाई आये हुए हैं।"

इसके बाद श्रीरामकृष्ण ने स्वयं गाना गाया—"श्रीगौरांग के प्रेम प्रवाह से नदिया में उथल पुथल मची हुई है।"

श्रीरामकृष्ण ने फिर गाया—"हरि नाम लेता हुआ यह कौन जा रहा है? रे माधाई, तू जरा देख तो आ।"

गाना हो जाने पर छोटे नरेन्द्र विदा हुए।

श्रीरामकृष्ण। तू अपने माँ-बाप पर खूब भक्ति किया कर। परन्तु वे अगर ईश्वर के मार्ग पर रोड़े अटकावें, तो उनकी बातें न मानना। खूब हड़ता रखना—यह बाप नहीं साला है, अगर ईश्वर के मार्ग पर विघ्न खड़ा करता है।

छोटे नरेन्द्र। न जाने क्यों, मुझे भय नहीं होता।

गिरीश घर से लौट आये। श्रीरामकृष्ण त्रैलोक्य से परिचय करा रहे हैं। कह रहे हैं—तुम लोग कुछ वार्तालाप करो। दोनों में कुछ बात चीत हो जाने पर, त्रैलोक्य से कह रहे हैं। जरा वही गाना एक बार और—"जय शचीनन्दन।"

त्रैलोक्य गाने लगे। (भाव नीचे दिया जाता है)

"हे शचीनन्दन, गुणाकर गौरांग, तुम पारस-पत्थर हो। भाव-रस के सागर हो। तुम्हारी मूर्ति कितनी सुन्दर है! और कनक की आभामयी मनोहर आँखें। मृणाल-निन्दित, आजानु-लम्बित, प्रेम-प्रसारित तुम्हारे युगल कर भी कितने सुकुमार हैं। शशिर वदन-कमल प्रेम-रस से भरा छलकता हुआ, सुन्दर भाल, चारु गण्डस्थल भी कितने सुन्दर हैं!—तुम्हारे ईश्वर-प्रेम की विकट अवस्था से सर्वांग कितना आकर्षक हो रहा है! तुम महाभाव-मण्डित हो, हरि-रस-

रञ्जित हो रहे हों, आनन्द से तुम्हारा सर्वांग पुलकित हो रहा है। प्रमत्त मातंग की तरह, ऐ हेमकान्ति, तुम्हारे अंग आवेश-विभोर हो हैं—अनुराग से भरे हुए हैं। तुम हरि-गुण-गायक हो, अलोक सामान्य हो, भक्ति-सिन्धु के श्रीचैतन्य हो। 'अहा! भाई' कहकर चाण्डाल को भी तुम प्रेमपूर्वक हृदय से लगा लेते हो, दोनों बाहुओं को उठा कर हरि-नाम कीर्तन करते हुए तुम्हारी आंखों से अविरल आंसुओं की धारा बह चलती है। 'मेरे जीवन-धन वे कहां हैं', कह कर तुम रोदन करते हो,—उस समय महास्वेद होता है।—कम्पन होता है,—हुंकार के साथ गर्जना होती है। पुलकित और रोमांचित होकर तुम्हारा सुन्दर शरीर धूलि-लुण्ठित हो जाता है। ऐ हरि-लीला-रस-निकेतन! ऐ भक्ति-रस-प्रस्रवण! ऐ दीन-जन-बान्धव! ऐ कुल-गौरव! प्रेम-शशिधर ऐ श्री चैतन्य! तुम धन्य हो—तुम धन्य हो!"

'मेरे जीवन-धन वे कहां हैं, कह कर तुम रोदन करते हो', यह सुन कर श्रीरामकृष्ण भावावेश में आकर खड़े हो गये,—बिलकुल बाह्य ज्ञान जाता रहा।

जब कुछ प्राकृत दशा हुई तब वे त्रैलोक्य से विनयपूर्वक कहने लगे—एक बार वह गाना भी—'क्या देखा मैंने केशव भारती के कुटीर में!' त्रैलोक्य ने वह गाना भी गाया।

गाना समाप्त हो गया। सन्ध्या हो आई। श्रीरामकृष्ण अब भी भक्तों के साथ बैठे हुए हैं।

श्रीरामकृष्ण (राम से)। बाजा नहीं है। अगर अच्छा बाजा रहा तो गाना खूब जमता है। (हंसकर) बलराम का बन्दोबस्त क्या है, जानते हो?—ब्राह्मण की गौ!—जो खाय तो कम पर दूध दे सेरों! (सब हंसते हैं) बलराम का भाव है—आप लोग खूब गाइये बजाइये! (सब हंसते हैं)।

परिव्राजक।

(स्वामी विवेकानन्द)

(गतांक से आगे)

चार हाथ छोड़कर एक बड़ा-सा काठ सलका के तौर पर बांधा गया। इसके बाद सलका सहित डोर झप से पानी में फेंक दी गई। जहाज के नीचे, एक पुलिस की नाव, हमलोगों के आने के वक्त से चौकी दे रही है कि कहीं बाहर जमीन से हमलोगों की किसी तरह की छुआछूत न हो जाय। उसी नाव पर दो आदमी मौज से झपटें ले रहे थे, और यात्रियों के विशेष घृणा के कारण हो रहे थे। अब वे सब बड़े मित्र हो उठे। पुकार पर पुकार दी जाने लगी, अरब मियां आंखें रगड़ते हुए उठ कर खड़े हो गये। कोई बखेड़ा तो नहीं कहीं उठ खड़ा हुआ, सोचकर कमर कसने की तैयारी कर रहे थे। ऐसे समय उन्हें मालूम हुआ कि यह इतनी पुकार सिर्फ उन्हें बर्छी के आकार का वह डोर से बँधा हुआ सलका चारे के साथ कुछ दूर हटा देने की यह अनुरोध-ध्वनि थी। तब आपने सांस छोड़ कर, बांका विस्तृत हँसी हँस कर एक बल्ली के सिरे से ठेलकर सलके को दूर हटा दिया और हमलोग उद्ग्रीव होकर—अंगूठों के सहारे खड़े होकर—बरास्दे पर झुके हुए, वह आता है—वह आता है श्रीमगर के लिये "सचकितनयनं पश्यति तव पन्थानम्" हो रहे थे; और जिसके लिये आदमी इस प्रकार बेचैन रहता है, वह हमेशा जैसा करता है, वही हुआ—अर्थात् "सखि, श्याम न आये" लेकिन सब दुःखों का एक अन्त है। तब एकाएक जहाज से प्रायः दो सौ हाथ दूर, भिस्ती की मशक के आकार का क्या एक उभड़ पड़ा।

साथ ही साथ "वह मगर, वह मगर" की ध्वनि। चुप चुप—लड़को ! मगर भग जायगा। अरे ऐ जी, टोपियां जरा उतार न लो, मगर भड़क जो जायगा—इस तरह की आवाजें कर्ण कुहरों में जबतक प्रवेश कर रही हैं तबतक वह लवण-समुद्र-जन्मा मगर बंसी संलग्न शोर के साथ मांस के गोले को उदराग्नि में भस्मावशेष करने के इरादे से चढ़े हुए पाल की नाव की तरह सोंसों करता हुआ सामने आ पहुंचा। और पांच हाथ आ जाय तो मगर का मुंह चारे से लगे। लेकिन वह भीमपुच्छ जरा हिला—सीधी गति चक्राकार बदल गई। जः, मगर चला जो गया जी ! फिर पूंछ जरा तिरछाई, और वह प्रकाण्ड शरीर घूम कर बंसी के सामने आ खड़ा हुआ। फिर सनसनाता हुआ आ रहा है—वह मुंह फैलाकर, बंसी पकड़ता ही है। फिर वह पाप पूंछ हिलने लगी, और मगर देह फेर कर दूर चला गया ! फिर वह देखो, चक्कर काट कर आ रहा है, फिर मुंह फैलाया, वह चारा दबा लिया मुंह से, इसी समय—वह देखो चित्त हो गया ; चारा खा लिया—खींचो, खींचो, चालीस पचास आदमी, खींचो जी जान से खींचो। कितना जोर है ! कितनी झटापट—कितना फैला मुंह। खींचो खींचो। पानी से वह उठा, वह पानी में घूम रहा है, फिर चित्त हो रहा है, खींचो खींचो। जः, चारा खुल गया ! मगर भाग गया। बताओ भला, तुम लोगों को इतनी क्या जल्दी थी ? जरा भी वक्त न दिया चारा खाने का। चित्त हुआ नहीं कि कभी खींचा जाता है ? अब—"गतस्य शोचना नास्ति" ; मगरजी तो बंसी छुड़ाकर ठंढे हुए। "पाइलट फिश" को उचित शिक्षा दी या नहीं, यह खबर नहीं मिली—लेकिन जनाव तो सीधे वीरगति। उधर वह भी "वाघा" बाघ की तरह काले काले डोरे किये हुए। खैर बाघा बंसी का सामीप्य छोड़ने के विचार से सद "पाइलट फिश"—"चोषक" अन्तर्धे।

परन्तु अधिक हताश होने की जरूरत नहीं,—वह देखो, पलायमान "बाघा" की देह से सटकर एक और प्रकाण्ड "मुंहचिप्टा" चला आ रहा है, अहा ! मगर के भाषा नहीं है ! नहीं तो "वाघा" जरूर पेट की खबर उसे सुनाकर सावधान कर देता। जरूर कहता, "देखो जी, सावधान रहना, वहां एक नया जानवर आया है, बड़ा स्वादिष्ट और खुशबूदार उसका मांस है, लेकिन कितना सख्त है हाड़ उसका ! इतने काल से मगरगिरी कर रहा हूं, कितनी तरह के जानवर—जीते हुए, मरे हुए, अधमरे—पेट में डाल लिये, कितनी तरह के हाड़गोड़, ईंट पत्थर, काट कूट कर पेट में भरे हैं लेकिन इस हाड़ के सामने और सब मक्खन हैं जी मक्खन ! यह देखो मेरे न दांतों की हालत, डाढ़ों की दशा क्या हो गई है, कह कर एक बार वह आकटि-देश विस्तृत मुख फैला कर आगन्तुक मगर को अवश्य ही दिखाता। वह भी प्राचीन वयः—सुलभ अभिज्ञता के साथ "चैंटा" मत्स्य का पित्त कुब्जे भेकी की प्लीहा, शंबूकों का ठंढा शोरवा—आदि आदि समुद्रज महौषधियों का कोई न कोई इस्तेमाल करने के लिये उपदेश देता ही। लेकिन जब यह सब कुछ भी न हुआ, तब या तो मगरों में भाषा का अत्यन्त अभाव है, या उनमें भाषा है पर पानी में बातचीत नहीं की जा सकती ! अतएव जितने दिनों तक किसी प्रकार के अक्षरों का मगरों में आविष्कार नहीं होता उतने दिनों तक उस भाषा का व्यवहार किस तरह हो सकता है ? अथवा, "वाघा" ने आदमियों के लगाव में आदमियों की बू पाई है, इसलिये "मुंहचिप्टा" से असल खबर कुछ न कह कर, मुस्कराकर, "अच्छे तो हो जी" कहकर सरक गया।—"मैं अकेला क्या जाऊं ?"

"आगे चले भगीरथ अपना शङ्ख बजाकर, पीछे पीछे गंगा आवें……" शङ्खध्वनि तो कुछ सुन नहीं पड़ती, लेकिन आगे

आगे चलती हैं पायलट मछलियाँ और पीछे पीछे [illegible] हिलाते हुए आ रहे हैं "मुँहचिपटा", उनके आसपास [illegible] हैं "मगर-चोषक" मछलियाँ। अहा, वह लोभ भी छोड़ा [illegible] दस हाथ दमिया के ऊपर मक मक करता हुआ [illegible] सुवास कितनी दूर तक फैल रही है, यह "मुँहचिपटा" [illegible] है। इस पर वह दाम भी कैसा? सफेद, लाल, [illegible] जगह! अमल कौन सी सुअर का मांस, काले [illegible] कोट कैसा हुआ, पानी के भीतर, [illegible] गोपियों [illegible] कृष्ण की तरह हिल रहा है ॥

अबके सब लोग चुप है, हिलना डोलना नहीं ; और देखो [illegible] पाजी न करना। लेकिन रस्सी के पास ही पकड़ रहना। [illegible] किनारे किनारे चक्कर काट रहा है। चारे को मुँह में लेकर [illegible] कर देख रहा है। देखने दो। चुप चुप, अब के चित्त हो [illegible] देखो करवटिया निगल रहा है ; चुप निगलने दो। तब "मुँहचिपटा" यथावसर, करवट लेकर चारा निगलकर ज्यों ही [illegible] कि वैसे ही पकड़ा खिंचाव! चौंका "मुँहचिपटा" मुँह [illegible] फेंक देनेके लिये, कि सृष्टि हुई अन्तर्यामी की। [illegible] और ऊपर से लड़के बूढ़े जवान सब दे खींच रस्सा पकड़ कर [illegible] वह देखो मगर का सर जल से ऊपर उठ आया। खींचो, [illegible] खींचो! यह लो, आधा मगर का पानी के ऊपर आ गया। [illegible] कितना बड़ा मुँह है! यह तो सभी कुछ मुँह और गला है! [illegible] वह देखो, सब हिस्सा पानी से निकल आया। वह—वह, काँटा [illegible] बिंध गया है, होंठ के आर पार हो गया है ; खींचो। ठहर ठहर, [illegible] अरब पुलिस मांझी। उसकी पूँछ की तरफ एक रस्सी तो [illegible] नहीं तो, इतने बड़े जानवर को खींच कर उठाना मुश्किल है। [illegible] होकर भाई! बस पूँछ के झटके से घोड़े के पैर टूट जाते हैं। फिर [illegible]

कितना भारी है। ओ मा, यह क्या? ठीक तो जी, मगर के पेट के नीचे से, वह क्या लटक रहा है? यह तो आँतें हैं। अपने बोझ से अपनी ही आँतें निकल आई। खैर, इसे काट दो, पानी में गिर जाय, बोझ घट जाय! खींचो भाइयो खींचो। अरे यह तो खून का फुहारा है। कपड़े का अब मोह करने से न होगा। खींचो, यह आया। अब जहाज के ऊपर फेंको; भाई होशियार, खूब होशियार, झपट कर एक हाथ वार और वह पूँछ, सावधान। बस, अब रस्सा छोड़ दो। धम, बापरे! कितना बड़ा मगर है! सावधानी की मार नहीं, उस काठवाली धन्नी से उसके सर पर मारो। ओ जी, फौजीमैन, तुम सिपाही हो, यह तुम्हारा ही काम है।—"ठीक तो"। खून से भरी देह, कपड़ा; फौजी यात्री वह धन्नी काठवाला उठा कर धमाधम देने लगे मगर के सिर पर। और औरतें—अहा कितनी बेदर्दी है, मारो मत आदि आदि कहकर लगी चिल्लाने; लेकिन देखना भी न छोड़ेंगी। इसके बाद उस बीभत्स संघटन का यहीं विराम किया जाय। किस तरह उस मगर का पेट चीरा गया, किस तरह खून की नदी बहने लगी, किस तरह वह [illegible] छिन्न अंग, भिन्न-देह, छिन्न-हृदय होकर भी कुछ देर तक काँपता रहा, हिलता रहा; किस तरह उसके पेट से अस्थि, चर्म, मांस काठ के टुकड़ादि टुकड़े निकले, ये सब बातें रहें। यहाँ तक असर हुआ कि उस दिन मेरे खाने-पीने की नौबत फिर नहीं आई। सब चीजों में उसी मगर की बू मालूम देने लगी।

यह स्वेज खाल खोदने के स्थापत्य का एक अद्भुत निदर्शन है। फर्डिनेण्ड लेसेप्स नाम के एक फरासीसी स्थपति ने यह नहर खोदी है। भूमध्य सागर और लोहित-सागर का संयोग होने पर यूरोप और भारतवर्ष के बीच व्यवसाय-वाणिज्य की एक बहुत बड़ी सुविधा हुई है। मानव-जाति की उन्नति की वर्तमान अवस्था के लिये जितने [illegible] प्राचीन काल से काम कर रहे हैं, उनके बीच में भारत पहला

है, भारत का वाणिज्य सबसे प्रधान है। अनादि काल से, उर्वरता और वाणिज्य-शिल्प में, भारत की तरह देश क्या और है? दुनिया के जितने सूती कपड़े हैं, रुई, पाट, नील, लाख, चावल, हीरे, मोती आदि का व्यवहार १०० वर्ष पहले तक था, यह कुल भारतवर्ष से आया करता था। इसके अलावा नफ़ीस रेशमी पश्मीना कमख़ाब आदि इस देश की तरह कहीं भी न होता था। इधर लौंग, इलायची, मिर्च, जायफल, जावित्री आदि नाना प्रकार के मसाले का स्थान भी भारतवर्ष ही है। इसलिये बहुत प्राचीन काल से ही जो देश जब सभ्य होता था, तभी उन सब वस्तुओं के लिये भारत के भरोसे पर रहना पड़ता था। एक स्थल मार्ग से, अफ़ग़ानी, ईरानी देश होकर और दूसरा एक पानी के रास्ते, रेड सी हो कर। सिकन्दरशाह ने ईरान विजय के बाद, नियार्कूस नामक सेनापति को जल मार्ग से, सिन्धु नद के मुख से समुद्र पार होकर लोहित समुद्र से रास्ता देखने के लिये भेजा था। बाबिलन ईरान, ग्रीस, रोम आदि प्राचीन देशों का ऐश्वर्य कहां तक भारतवर्ष के वाणिज्य पर टिका हुआ था, यह बहुतसे लोग नहीं जानते। रोम के ध्वंस के बाद मुसलमानी बुगदाद और इटालीयन वेनिस और जेनोआ भारतीय वाणिज्य के प्रधान पाश्चात्य केन्द्र हुए थे। जब तुर्कों ने रोम-साम्राज्य दखल करके इटैलियनों के लिये भारत के वाणिज्य का रास्ता बन्द कर दिया, तब जेनोआ निवासी कोलम्बस (क्रिस्टोफोरो कलम्बो) ने, आटलांटिक पार हो कर भारतवर्ष में आने का नया रास्ता निकालने की चेष्टा की, फल हुआ अमेरिका महाद्वीप की आविष्क्रिया। अमेरिका पहुंचने पर भी कोलम्बस का भ्रम नहीं गया कि यह भारतवर्ष नहीं है। उसी लिये अमेरिका के आदिम निवासी लोग अब भी इण्डियन नाम से पुकारे जाते हैं। वेदों में सिन्धुनद के "सिन्ध" "इन्दू" दोनों नाम पाये जाते हैं; ईरानी लोगों ने उसे "हिन्दू" ग्रीक लोगों ने "इन्डूस" बना डाला। इसीसे

इण्डिया—इण्डिया न बना। मुसलमानी धर्म के उदय के समय हिन्दु कहाये गये काले (बुरे), जिस तरह अब "नेटिव"।

इधर पोर्तगीज लोगों ने भारत के लिये नया रास्ता अफ्रिका की प्रदक्षिणा करते हुए खोज निकाला। भारत की लक्ष्मी पोर्तुगाल के ऊपर सदय हुई; बाद फरासीसियों, डचों, दिनेमार और अंग्रेजों पर। अंग्रेजों के यहां भारत का वाणिज्य और राजस्व सभी कुछ है; इसीलिये अंग्रेज अब सब के ऊपर बड़े जात हैं। परन्तु अब अमेरिका आदि देशों में भारत की चीजें, बहुत जगह, भारत से भी उत्तम उत्पन्न होती हैं। इसीलिये भारत की अब उतनी कद्र नहीं। यह बात यूरोपीय लोग मानना नहीं चाहते। भारत नेटिवों से भरा हुआ है, भारत जो उनके धन और सभ्यता का प्रधान अवलम्ब और सहायक है, यह बात नहीं मानना चाहते, समझना भी नहीं चाहते। हमलोग भी बिना समझाये छोड़ेंगे? सोचकर देखो बात क्या है। वे जो लोग किसान हैं, कोरी जुलाहे भारत के नगण्य मनुष्य हैं, विजाति-विजित स्वजाति-निन्दित छोटी छोटी जातियां हैं; वही, लगातार चुपचाप काम करती जा रही हैं, अपने परिश्रम का फल भी नहीं पा रही है। परन्तु धीरे धीरे प्राकृतिक नियम से दुनिया में कितने परिवर्तन होते जा रहे हैं। देश, सभ्यता, प्राधान्य उलटते पलटते जा रहे हैं। हे भारत के श्रमजीवियों, तुम्हारे नीरव, सदा ही निन्दित हुए परिश्रम के फलस्वरूप बाबिल, ईरान, अलकजन्द्रिया, ग्रीस, रोम, वेनिस, जेनोआ, बुगदाद, समरकन्द, स्पेन, पोर्तुगाल; फरासीसी, दिनेमार, डच और अंग्रेजों के क्रमान्वय से आधिपत्य हुआ और ऐश्वर्य मिला है। और तुम? कौन सोचता है इस बात को। स्वामीजी! तुम्हारे पितृ पुरुष दो दर्शन लिख गये हैं दस काव्य तैयार कर गये हैं, दस मन्दिर उठवाये हैं तुम्हारी बुलन्द आवाज से आकाश फट रहा है; और जिनके रुधिर स्राव से मनुष्य जाति

की यह जो कुछ उन्नति हुई है उनके गुणों का गान कौन करता है ? लोकजयी धर्मवीर रणवीर काव्यवीर सब की आंखों पर, सबका पूज्य है ; परन्तु कोई जहां नहीं देखता, कोई जहां एक वाहवा नहीं देता, जहां सब लोग घृणा करते हैं, वहां वास करती है अपार सहिष्णुता, अनन्य प्रीति और निर्भीक कार्यकारिता ; हमारे गरीब, घर द्वार पर दिनरात मुंह बन्द करके कर्तव्य करते जा रहे हैं ; उसमें क्या वीरत्व नहीं है ? बड़ा काम आने पर बहुतेरे वीर हो जाते हैं, दस हजार आदमियों की वाहवा के सामने कापुरुष भी अक्लेश ही प्राण देता है। घोर स्वार्थपर भी निष्काम हो जाता है ; परन्तु अत्यन्त छोटे से कार्य में भी सब के अज्ञात भाव से जो वैसे ही निस्वार्थता, कर्तव्यपरायणता दिखाते हैं वही धन्य हैं—वे तुमलोग ही—भारतवर्ष के हमशा के पैरों तले कुचले हुए श्रमजीवियो !—तुमलोगों को मैं प्रणाम करता हूं।

प्राच्य-धर्म प्रणाली

सभ्यता के आलोक का ज्ञान आज से छः हजार वर्ष पूर्व से है। मिश्र, चीन और भारतवर्ष में इसका प्रकाश था। इन तीन देशों में तीन जातियां रहती हैं। बहुत से विद्वान वैदिक सभ्यता को ही सब से पुरानी कहते हैं। इसकी कल्पना २५००० वर्ष ईसा के पूर्व की जाती है। इस समय रोम का जन्म भी नहीं था और ग्रीस अन्धकार में था। सन्देह नहीं, इस पर विद्वानों में मतभेद है। इस समय के धारावाहिक पौर्वापर्य के सम्बन्ध में कैम्ब्रिज का पुराना इतिहास अपनी पुस्तक में बहुत कुछ बतलाया है।

दजला और फुरात नदियों के किनारे बसने वाले या समीपवर्ती आर्य, भारतीय आर्यों से बहुत कुछ सम्बन्ध रखते थे। उस समय

ईरानी आर्यों को 'असुर' शब्द से सम्बोधित किया जाता था। असुर शब्द मर्य्यादा बोधक था। ऋग्वेद में अग्नि, चन्द्र, सूर्य्य प्रभृति देवताओं के लिए भी यह असुर शब्द व्यवहृत हुआ है। वेदोक्त आदि ऋषिगण अङ्गिरा प्रभृति का भी काल-निर्णय करते हुए तत्त्ववेत्ताओं में मतभेद हो जाता है।

भारतवर्ष के मनु और प्रलय के कथानकों का बहुत कुछ अंश हजरत नूह और उनके समय के जल प्रलय की कहानियों से बहुत मिलते हैं। आर्य-साहित्य के व्यक्तिवाचक शब्द, हिब्रू और बाइबिल के शब्दों से मिलते हैं। सृष्टि रहस्य के सम्बन्ध में भारतीय, असीरियन और हिब्रू ऋषियों के मतों में भी समानता पाई जाती है। प्राचीन, मिश्र कससाइट या हिटाइट लिडियान आदि के देवी देवताओं के नाम करण संस्कार से भारत का सम्बन्ध स्पष्ट मिल जाता है। भूमण्डल के धार्मिक विषय में भारत का निकटतम सम्बन्ध बतलाते हुए डाक्टर अविनाशचन्द्रजी ने अपना एक आलोचनात्मक ग्रन्थ ही लिख डाला है। किन्तु आज भौगोलिक स्थान, जल वायु शासन प्रणाली और सामाजिक रीतियों ने परस्पर विचित्र भेद-भाव उपस्थित कर दिया है, जिसकी कल्पना प्राचीन महर्षियों ने शायद ही की हो। इस निबन्धमें हम प्रायः छः हजार वर्ष पूर्व की उपासना पद्धति और धार्मिक संस्कार के सम्बन्ध में यत्किंचित् लिखने का यत्न करेंगे।

सर्व प्रथम मिश्र को ही ले लीजिये। प्रख्यात तत्त्वविदों या ऐतिहासिकों ने ठीक ही कहा है ; "As among all other early peoples, it was in his surroundings that the Egyptian saw his Gods." वस्तुतः प्राथमिक धर्म पद्धति, सामाजिक संस्कार और शासन प्रणाली देश की भौगोलिक गठन प्राकृतिक बनावट पर निर्भर है। ग्रीस के प्राकृतिक सौन्दर्य, भौगोलिक

रचना, अगणित पर्वत शृंग, चतुर्दिक समुद्र के अस्तित्व आदि से ही ग्रीक सभ्यता के प्रथम युग में धार्मिक जगत् की रचना की थी।

ग्रीस के आदिम मानस पट पर अनेक मूर्तियां इसे प्रमाणित कर सकती हैं। इन्हें उस समय अपने समीपवर्ती स्थानों का भी ज्ञान नहीं था, जिस समय शुभ्र हिमाचल किरीटिनी और विन्ध्य मेखला भारतीय सभ्यता आदिम आर्य सन्तानों की पवित्रता और सभ्यता का झण्डा लेकर सातों समुद्र तट पर विचरण करने शिक्षा देती थी। वे ही धार्मिक कल्पना के नवविधान जगतके कोने कोने में पहुंचाते गए।

मिश्र के आइसिस और औसिरिस भारत के सावित्री और सत्यवान हैं। उन्हें डाक्टर अविनाशचन्द्र अपनी पुस्तक के २८० पृष्ठ पर शिव और शक्ति का रूप देते हैं। बाइबिल के Isthar-Tammaz ग्रीस के Orpheus-Eurydice के अनुरूप होते हुए भी भिन्नता की भित्ति खड़ी करते हैं। मिश्र की पौराणिक घटनाओं के साथ भारती यूनानी तथा बाइबिल के मानने वाले अन्य देशों के बहुत से पौराणिक अंशों का सादृश्य है। सुदूरवर्त्ती आइसलैण्ड, नार्वे की पुरानी घटनाएं भी इनसे सम्बन्ध रखती हैं। इनकी आलोचनाएं हमें मानव जाति की साधारण सम्पत्ति का एक विशेष रूप बतला रही हैं। आदिम युग का जल प्रलय समाप्त होने पर विश्व ब्रह्माण्ड की उद्भव-कल्पना, चन्द्र सूर्य को देवता बतलाते हुए भी उनके वास्तविक ज्ञान की कल्पना इसी बात का समर्थन करती हैं। विपन्नता या विभिन्नता का रूपान्तर करते हुए या मनु, अनु और हजरत नूह का अभिन्नत्व प्रगट करते हुए, सुप्रसिद्ध पण्डित रेवरेण्ड कृष्णमोहन बन्दोपाध्याय ऐसे विद्वान भी चकित हो जाते हैं। इसी प्रकार पाश्चात्य Delacouperie ब्याबेलोनिया के राजा और चीन के राजा की समानता बतलाते हुए चक्कर खा जाते हैं। चीन, मिश्र, कालीडिया, ब्यावेलोनिया प्रभृति देशों के उद्धारकों ने जिन प्राचीन सिद्धान्तों का

एकीकरण किया है कभी कभी उन्हें भी उनमें भ्रान्ति का अनुभव होने लग जाता है। जो कुछ हो, इस समय हम मिश्र के सम्बन्ध में एक काम की बातें लिखते हैं। वृष, बाजपक्षी, शृगाल आदि के पूजा, जिसे टोटका भी कहा जाता है, मिश्र में भी प्रचलित थी। इस पर भी लोगों में मतभेद है कि इस प्रकार की जीवोपासना मिश्र में थी। वहां आकाश को एक विशाल जलाशय माना गया है। पृथ्वी को अधोमुख किये हुए एक पुरुष को माना गया है। इसी पुरुष के पृष्ठ भाग पर वे पेड़ पौधे जलजन्तु आदि का जन्म मानते हैं। सृष्टि के आरम्भ में पृथ्वी के अस्तित्व को नहीं मानते। वे कहते हैं कि उस समय विराट समुद्र के अतिरिक्त कुछ नहीं था। इसी समुद्र से एक कमल का प्रादुर्भाव हुआ। इसी कमल से सूर्य का जन्म और सूर्य्य से Shu, Tenjunt, Keb और Nut चार सन्तानों का पैदा होना मानते हैं। पहिले दो Keb के शरीर पर पैर देकर और सिर पर Nut को रख कर खड़े हुए। बस ये ही क्रमशः भूमण्डल और गगन मण्डल कहलाए। समयानुसार इन दोनों Keb और Nut के भी Osiris, Isis, Nepthys और Set नामक चार सन्तानें हुईं। इस तरह से सूर्य्य और ये—पौत्र पौत्री—नव देवी देव कहलाए।

Osiris और Isis ग्रीस-रोम के Jupiter और Juno के समान भाई-भगिनी और स्वामी-स्त्री हुए।

Osiris ने (इनके सम्बन्ध में लोगों के भिन्न भिन्न मत हैं) कहा जाता है कि परम पिता सविता के निकट होने से पृथ्वी का शासन-भार प्राप्त किया और Isis के साथ सानन्द काल-यापन करने लगे। ये जगत के हित-साधन में लगे रहने पर और प्रकृत-पुरुष से अशेष धन्यवाद पाते रहने पर भी अपने भाई Set से ईर्षा करने से बाज नहीं आ सके। अन्त में Set ने इनकी हत्या तक कर दी। किन्तु Isis के सतीत्व ने Anubis देवता की सहायता से उसे पुनः

जीवित कर लिया। अब उसे जीव-लोक में स्थान नहीं मिला, बल्कि वह मृत्यु-लोक का अधीश्वर बनाया गया। समय पाकर Isis को Horus नामक एक पुत्र हुआ। यही Set को हरा कर अपने पिता का राज्य पुनः प्राप्त कर सका था, जिसे जारज पुत्र कह कर सेटने फिर गिरा दिया।

धर्मबल से यह फिर नरलोक में पूजा और श्रद्धा का भाजन बना ऋग्वेदिक इण्डिया नामक पुस्तक के १२ वें अध्याय के देखने से बड़े बड़े गुल खिले हुए दिखाई देते हैं। मिश्र के ९ देवता आदि-देव थे। कुछ समय बीतने पर Anubis, Horus, Hathor, Neit, Ptah आदि अनेक देव हुए। इन देवों की पूजा तो यहां होती ही थी, किन्तु इनमें सूर्य की पूजा मुख्य थी। परम पिता स्वयम्भू सविता की Re या Ra नाम से मन्दिरों में प्रतिष्ठा होने लगी। समय पाकर एक ही देवता भिन्न भिन्न स्थानों में और भिन्न भिन्न युगों में, भिन्न भिन्न नामों और मूर्तियों से पूजे जाने लगे। प्रकृति परिचायक आदि देव के साथ साथ दूसरे दूसरे देवता भी पूजे जा रहे थे। Memphis नगर में सब देवों से Ptab का स्थान ऊँचा था। कुछ समय बाद अगणित मन्दिर और अगणित देव-देवी मिश्र में फैल गये। प्राचीन मिश्र के देवों की आलोचना करते हुए अध्यापक Petrie ने इनकी छः श्रेणियां बनाई है। १—बन्दर और भेड़ा आदि देव पशुगण, २—अंश रूप से पूजित Khnumn, शृगाल देवता Anubis आदि 3—Osiris Isis आदि मनुष्य-मूर्ति देवता, ४—Ra या सूर्य आदि Cosmic या जागतिक देवता, ५—सृष्टिकर्त्ता Ptah, सत्यदेव Maat आदि गुण वाचक देवता, ६—Bes, Baal, Ashtorath या Isthar आदि विदेशी देवता।—इस प्रसङ्ग में अध्यापक T. E. Pest का मत विशेष रूपसे उल्लेख योग्य है।

इन्होंने बतलाया है कि, प्राचीन काल में मिश्र की जातियाँ और

उपजातियां भिन्न भिन्न देवी और देवताओं की पूजा किया करती थीं। इसे टोटका का ही रूप इन्होंने भी दिया है और प्रतिपादित किया है कि यह उपासना प्रकृति परिचायक जीव विशेष या वस्तु विशेष की पूजा थी। इन जातियों में परस्पर सद्भाव था ही नहीं, वे सदा परस्पर लड़ा करती थीं। अतः विजेता के अनुसार ही उनके धार्म्मिक विचारों में परिवर्तन हुआ करता था। इससे इस पद्धति में परिवर्त्तन तो कुछ नहीं हुआ, किन्तु राष्ट्रीय एकीकरण की ओर सब का झुकाव होता गया। इस तरह बलवती जाति और उसी के देव देवी देश भर में मान्य हुए और कमजोरों के देव देवी विलुप्त हो चले। Pest महाशय धर्म्म पद्धति के लिहाज से इन्हें चार श्रेणी में विभक्त करते हैं। ऊपर बतलाए हुए देवी देवताओं के अतिरिक्त वे भी इस श्रेणीमें आ गये थे, जो किसी विशेष गुण के कारण मशहूर होते जा रहे थे। हम इस लेख में इस प्रकार के धार्म्मिक परिवर्तनों का इतिहास नहीं लिखना चाहते। अतः आगे से धार्म्मिक परिवर्त्तन-विवर्त्तन संक्षेप में देने का यत्न करेंगे। इन देवी देवताओं का रूप-रंग, ठाट बाट केवल सम सामयिक भद्र पुरुषों के ही अनुकूल था। ज्यों ज्यों सभ्यता का विकाश होता गया, त्यों त्यों मन्दिरों में भी परिवर्त्तन होता गया। आज कल भारतवासी कालीघाट की काली माई या बनारस के विश्वेश्वर नाथ पर जिस प्रकार की श्रद्धा-भक्ति रखते हैं, वैसे ही मिश्र वाले भी अपने देवताओं पर स्नेह रखते थे। इस प्रकार वहां के सभी संस्कार इस देश ही के समान देखने में आते हैं। वैदिक काल में आर्य, मूर्त्ति पूजा का इस प्रकार आडम्बर नहीं रखते थे। उस समय भारत में मूर्त्ति-पूजा थी वा नहीं, इसमें बहुतों को सन्देह है। मिश्र के पुराने बाशिन्दे उस समय मानवी शरीर को नश्वर कहते थे। उनके विचारों से यह शरीर तो अवश्य नष्ट हो जाता है किन्तु सूक्ष्म देह जिसे Ka

(See Cambridge ancient History Vol I ch. IX)

कहते हैं अनश्वर है। हिन्दू दर्शनों में शायद इसी Ka का नाम आत्मा है। यही Ka या Ba मृत देह की कभी समय समय पर पूर्ती करता रहता है। कोई कोई इस Ka या Ba के परलोक जाने के सम्बन्ध में भी अपना मत प्रदर्शित करते हैं। कहते हैं कि मृत्यु के पश्चात् ये Ka या Ba पश्चिम के मृत राज्य (Kingdom of the dead) को पधारते है। Osiris इसी लोक का मालिक है। बहुतों का मत है कि यही Osiris किये हुए कर्मों के अनुकूल दण्ड आदि की व्यवस्था करता है। सत्यदेव Maat के आगे इन मृतकों के Ka या Ba के हृत्पिण्डों की तौल होती है। जिसका कलेजा शुतुर्मुर्ग पक्षी के समान भारी हुआ, उसे पापी समझा जाता है और उसे पकड़ कर पीस कर उसका गोबर निकाला जाता है। इनके लिये पाताल में एक स्थान रहता है, उसे अन्न-भूमि (Field of food) कहते हैं। इस जगह सभी नहीं आ सकते। बड़े बड़े पुण्यात्मा, प्रचुर धर्म कर्म वाले Ba और Ka को यहां स्थान मिलता है।

पुरोहित आत्मा के कल्याण के लिये अनेक मन्त्र पढ़ा करते थे। प्रायः उनका भाव यही है कि, "जाओ, तुम्हें Isis सादर बुलाते हैं। तुम्हारी इन्तजारी Nepthys करते हैं। तुम Osiris की तरह पुनः जीवन लाभ करोगे।" मिश्र के इन विचारों को संग्रह करके Book of the Dead नामकी एक पुस्तक ही लिखी गई है। इसमें मिश्र वासियों के श्राद्ध-तत्त्वों पर भी विवेचना की गई है। चीन और भारत के विचारों की समता मिश्र वासियों के इन विचारों के साथ तुलनात्मक दृष्टि से की जा सकती है। ऋग्वेद के दशम मण्डल में प्रदर्शित अन्त्येष्टि कालीन सूक्तियाँ चीन की Book of Odes और मिश्र की प्राचीन Mortury Texts एक साथ रख कर तुलना करने की चीजें हैं।

(See Combridge ancient History Vol I. Chapter VII)

चीन की उस पुस्तक में पारलौकिक सुख का एक अच्छा निरूपण है। उसमें पुण्य कर्म के पुरस्कार दाता यम का उल्लेख है। यम के प्रहरियों की विशद व्याख्या है। शव को अग्नि देव कैसे जलावेंगे, आंखें कहां जावेंगी, शरीर के अन्य अंग कहां पहुंचेंगे, मृत व्यक्ति को अग्निदेव कहां पहुंचावेंगे, स्त्री को सान्त्वना देना, विधवा विवाह या सती दाह सब की व्याख्या है।

परमहंस श्रीरामकृष्ण

(लेखक—पं० विद्याभास्कर शुक्ल साहित्यालंकार)

आध्यात्मिक जीवन ही श्रेष्ठ और वास्तविक जीवन है, यह सिद्ध कर दिखाने वाले महा पुरुषों के जन्म देने का सौभाग्य भारतवर्ष को ही प्राप्त है। भारतीय महापुरुषों ने ही संसार को शान्ति का पाठ पढ़ाया है। ऐसे ही महापुरुषों में परमहंस श्रीरामकृष्ण भी थे।

परमहंस रामकृष्ण का जन्म १८३६ ई० में हुगली के समीपवर्ती कामारपूकुर नामक गांव में एक ब्राह्मण कुल में हुआ था। उनके पिता का नाम था श्री खुदीराम चट्टोपाध्याय। खुदीराम जी के तीन पुत्र थे, जिनमें हमारे चरित नायक सब से छोटे थे। ईश्वरीय अवतारों के सदृश उनके जन्म विषय में भी अनेक किम्वदन्तियां प्रसिद्ध हैं।

श्री रामकृष्ण जी बाल्यकालसे ही अत्यन्त नम्र स्वभाव के थे। वाणी बहुत ही मधुर और मनोहारिणी थी। इसीसे अड़ोस-पड़ोस और गांव के लोग उनसे बहुत प्रसन्न रहा करते थे और प्रायः अपने घरों में ले जाकर उन्हें भोजन कराया करते थे। उनका ध्यान कृष्ण-चरित सुनने और उनकी लीला करने में बहुत लगता था। देख-

पूजा में तो ऐसी श्रद्धा थी कि स्वतः पार्थिव पूजन किया करते थे और कभी-कभी भक्ति-भावमें तन्मय होकर अचेत हो जाते थे। समीपवर्ती भक्तिविशाल में जाकर प्रायः अभ्यागतों की सेवा, परिचर्या किया करते थे।

नौ वर्ष की अवस्था में श्रीरामकृष्ण जी का यज्ञोपवीत हुआ और वे तभी पढ़ने के लिये पाठशाला में भेजे गये, चित्त पढ़ने में बिलकुल न लगता था। संस्कृत पाठशाला में पण्डितों के व्यर्थ के नित्य प्रति के वादविवाद सुनकर घबड़ा गये और दुखी होकर एक दिन बड़े भाई से स्पष्ट बोले—

"भाई, पढ़ने लिखने से क्या होगा? इस पढ़ने लिखने का उद्देश्य तो केवल धन-धान्य पैदा करना है। मैं तो वह विद्या पढ़ना चाहता हूं जो मुझे परमात्मा की शरण में पहुंचा दे।" ऐसा कह कर उस दिन से पढ़ना छोड़ दिया। यदि आप की हस्त लिखित रामायण न मिलती, तब तो लोगों को यही निश्चय न होता कि श्री रामकृष्ण जी बिलकुल ही पढ़े लिखे थे या नहीं। आप का चित्त पूजा में तो लगता ही था—दक्षिणेश्वर में काली मन्दिर के पुजारी बना दिये गये। वहां अनन्य भक्ति के साथ काली जी की पूजा करने लगे, परन्तु यह प्रश्न हृदय में सदैव हिलोरें लेता रहता था कि वस्तुतः मूर्ति में कोई तत्त्व है? क्या सचमुच यही जगज्जननी आनन्दमयी मां हैं या यह सब केवल स्वप्न मात्र है?" इत्यादि। इस प्रश्न से उन्हें यथा विधि काली पूजा करना कठिन हो गया। कभी भोग ही लगाते रह जाते, कभी घण्टों आरती ही करते रहते, कभी सब कार्य छोड़ कर रोया ही करते और कहा करते "मां ओ मां! मुझे दर्शन दो। व्यर्थ गये, देखो जीवन का एक दिन और बीता चला गया। क्या दर्शन नहीं होगी? नहीं, चाहिये तो जल्दी दर्शन।" उनमें इतनी विकलता आती कि उन्हें पूजा त्यागनी ही पड़ी।

परमहंस जी अपनी धुन में मस्त हो गये, दिन रात उन्हें काली-दर्शन का ही ध्यान रहने लगा। उन्होंने १२ वर्ष की कठिन तपस्या की, जिसमें खाना पीना, सोना छोड़ कर एक टक एक ही ध्यान में रहे। इस समय आप का भतीजा कभी कभी जबरन उन्हें दो—चार ग्रास भोजन करा जाता था। १२ वर्ष की कठोर तपस्या के पश्चात् उन्होंने अपूर्व शान्ति लाभ की।

कञ्चन-भाव दूर करने के लिये आप एक हाथ में रुपया और अशर्फी तथा दूसरे में मिट्टी लेकर कहते थे—"ऐ मन, जिस पर विक्टोरिया की छाप लगी है यह वह वस्तु है जिससे मनुष्य भांति भांति के पदार्थ भोगता है, ऐश करता है। इसमें बड़े आलीशान मकान बनाने की शक्ति है, परन्तु ज्ञान, सच्चा आनन्द या ब्रह्म को प्राप्त करने में यह कदापि सहायता नहीं दे सकती।" फिर दूसरे हाथकी ओर देख कर कहते—"देख, यह मिट्टी है। यह वह वस्तु है जिससे खाद्य पदार्थ उत्पन्न होते हैं, जिसके द्वारा बड़े बड़े मकान बनते हैं बड़ी-बड़ी मूर्त्तियां बनती हैं। ऐ मन, ये दोनों ही जड़ पदार्थ हैं, समान हैं। तू इन्हें लेकर क्या करेगा? तू तो सच्चिदानन्द में लीन होने की चेष्टा कर।" ऐसा कहते हुए रुपया, अशर्फी और मिट्टी तीनों को एक में मिला कर गङ्गा जी में फेंक देते थे। एक और पहुंचे हुए साधु थे, जिनका नाम था तोताराम। रामकृष्ण जी इन्हें अपना गुरु मानते, परन्तु तोताराम जी इन्हें अपना सखा मानते थे। एक दिन आप लोगों में कुछ बात चीत हो रही थी कि इतने में किसी व्यक्ति ने आकर तोताराम जी की धूनी से आग उठा कर चिलम में भर ली। तोताराम जी बड़े क्रुद्ध हो गये और उसे बहुत कुछ बके झके कि तू ने मेरी अग्नि अपवित्र कर डाली। यह सुन कर परमहंस जी से न रहा गया। उन्होंने नम्रतापूर्वक कहा—"महाराज, क्या इसी प्रकार आप सब वस्तुओं को भ्रम मानते हैं? क्या यह आदमी और

अग्नि ब्रह्म से भिन्न वस्तु है ? ज्ञानियों को तो ऊंच नीच समान है।" तोताराम जी शान्त होकर बोले—"भाई तुम ठीक कहते हो। आज से मुझे क्रुद्ध न देखोगे।" इसके बाद उनको कभी क्रोध करते नहीं देखा गया।

शास्त्र में बतलाया है कि भगवान की भक्ति के नौ प्रकार हैं—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद-सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य-भाव, सख्य-भाव और आत्म-निवेदन। स्वामी जी ने पृथक पृथक प्रत्येक प्रकार की साधना करके पूर्ण भक्ति प्राप्त की।

यही नहीं, स्वामी जी ने सिक्ख धर्म स्वीकार करके उसमें पूर्ण भक्ति प्राप्त की। तीन चार दिन एक मुसलमान के साथ रहकर मुहम्मदीय धर्म का भी निचोड़ देखा। ईसा के चित्र को ही देख कर कुछ समय के लिये आत्म विस्मृत हो गये, कई दिन तक उन्हीं का ध्यान करते रहे।

इस प्रकार सब धर्मों व सम्प्रदायों का मथन करके स्वामी जी ने निश्चित समझ लिया कि ईश्वर प्राप्ति के लिये किसी विशेष धर्म की आवश्यकता नहीं, वह तो किसी भी धर्म में प्राप्त किया जा सकता है।

ऐसा निश्चय कर के वे तीर्थयात्रा को निकले और एक बार उत्तर भारत में सर्वत्र घूम कर दक्षिणेश्वर में आकर ठहरे। यहीं रह कर लोगों को धर्मोपदेश करने लगे। लोग बड़ी बड़ी दूर से धर्मोपदेश सुनने के लिये यहां आया करते थे, जिनमें बड़े बड़े विद्वान, धर्मनिष्ठ और धनवान आदि सभी श्रेणी के पुरुष होते थे। दिन रात दर्शनार्थ आए हुए लोगों की खासी भीड़ लगी रहा करती थी।

परमहंस ज्ञान, योग, वेदान्त अथवा अद्वैत मीमांसा का निरूपण किया करते थे। उनका कहना था—"ब्रह्म, काल, देश, निमित्त आदि से कभी मर्यादित नहीं हुआ, न हो सकता है फिर भला मुख के

शब्द द्वारा ही उसका यथार्थ वर्णन कैसे हो सकता है। ब्रह्म तो एक अगाध समुद्र के समान है, वह निरुपाधिक, विकार-हीन और मर्यादातीत है। तुम से यदि कोई कहे कि महासागर का यथार्थ वर्णन करो तो तुम बड़ी गड़बड़ी में पड़ कर यही कहोगे—अरे इस विस्तार का कहीं अन्त है, असंख्य लहरें उठ रही हैं, कैसा गर्जन हो रहा है, इत्यादि। इसी तरह ब्रह्म को समझो।"

यदि आत्म ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा रखते हो तो पहले अहं-भाव को दूर करो क्योंकि जब अहंकार दूर न होगा, अज्ञान का पर्दा कदापि न हटेगा। तपस्या, सत्संग, स्वाध्याय आदि साधनों से अहंकार दूर कर आत्म ज्ञान प्राप्त करो, ब्रह्म को पहचानो।"

जिस प्रकार पुष्प की सुगन्ध से आकृष्ट हो कर भ्रमर समूह उस पुष्प को आच्छादित कर लेता है उसी प्रकार परमहंस श्रीरामकृष्णजी के आत्म-ज्ञान-रूपी अबाधित प्रकाश से आकृष्ट भक्त रूपी पतङ्ग आप को सदैव घेरे रहते थे। आप सदैव सबको धर्मोपदेश रूपी वचनामृत से तृप्त करते रहते थे। स्वतः तो हर समय ब्रह्मलीन ही रहते थे।

एक दिन श्रीरामकृष्णजी के गलेमें कुछ पीड़ा होने लगी, शनैः शनैः उसने Cancer का रूप धारण कर लिया। डाक्टर वैद्यों ने औषधोपचार में उठा रखा नहीं पर आप तो समझ चुके थे कि अब मुझे इस संसार से जाना है। तीन मास बीमार रहे पर बराबर उत्साह पूर्वक पूर्ववत् धर्मोपदेश करते रहे। एक दिन आपने एक भक्त से पूछा—"आज श्रावणी पूर्णिमा है ? तिथि-पत्र में देखो।" भक्त ने देख कर कहा—"हां" बस, आप समाधि मग्न हो गये और प्रतिपदा को प्रातःकाल यह लीला समाप्त कर दी। घर घर यह दुःखद समाचार फैल गया। बात की बात में सहस्रों नर-नारी एकत्रित हो गये। पञ्च-तत्त्व का शरीर पञ्चतत्त्व में मिला दिया गया।

श्रीरामकृष्ण जी सदैव शान्त और प्रसन्न मुख रहा करते थे।

उन्हें पदार्थ का क्रोध करते हुए तो कभी भी देखा ही नहीं गया। उनमें अद्भुत आकर्षण शक्ति थी। मनुष्य उनके उपदेश से एक दम प्रभावान्वित हो जाता था। दूसरों की शंकाएँ वे तू मन्तर की तरह बात की बात में नष्ट कर देते थे।

प्रत्येक बात के समझाने में वे अनेक उदाहरण देते थे जिससे मनुष्य के हृदय पर उनकी बात पूरी तरह जम जाती थी। उनके जीवन की अनेक घटनाएं हैं।

काल प्रसिद्ध स्वामी विवेकानन्द परमहंस जी के ही प्रधान शिष्य थे। सुप्रसिद्ध श्री केशव चन्द्र सेन के जीवन के महान परिवर्तन के कारण परमहंस जी ही थे।

एक बार श्री ईश्वर चन्द्र विद्यासागर परमहंस जी के दर्शनों की इच्छा से उनके पास गये। परमहंस जी कुछ देर टकटकी लगाकर उनको ओर देखते रहे फिर बोले—

"आज तक मैंने बहुत से कुएँ, नाले, नहरें, नदी, सब देखी थीं पर सौभाग्य से आज सागर का दर्शन हो ही गया।

विद्यासागर—पहले आप मीठे पानी के पास थे, अब आपको खारा पानी मिलेगा।

परमहंस—नहीं, आप खारे समुद्र नहीं, आप तो क्षीर सागर हैं। अविद्या नहीं, विद्यासागर हैं।

विद्यासागर—(संकोच से हँसते हुए) आप जो चाहें कहें।

परमहंस—आप का स्वभाव सत्वगुणी है जो सत्य ज्ञान की ओर ले जाने वाला है। हाँ, यह आपको रजस्व नहीं बैठने देता, कर्म उद्योग में लगाता है। पर आप सिद्ध पुरुष हैं, आपका [illegible] बिलकुल मृदु और कोमल हो गया है जैसे आलू आदि [illegible] सिद्ध (तैयार) होने पर हो जाते हैं। जो आपका निष्काम बुद्धि से होता है, उसके लिये क्या कहना।

विद्यासागर—परन्तु कुछेक दाल सिद्ध होने पर घोटने से कठिन हो जाती है, मृदु नहीं रहती। क्या यह सच है?

परमहंस—परन्तु आप वैसे पण्डित नहीं हैं, आपका यह हाल नहीं है। पञ्चाङ्ग में लिखा रहता है कि अमुक अमुक दिन इतनी इतनी जल वृष्टि होगी लेकिन पञ्चाङ्ग निचोड़ने से एक बूंद भी जल नहीं निकलता। इसी तरह हम लोगों में पण्डित कहलाने वाले बहुत हैं जो बड़ बड़ कर बातें तो किया करते हैं, पाण्डित्य तो बघारते हैं पर अनुभव के साथ बोलने वाले बहुत कम हैं, आप अनुभव के साथ बोलते हैं।

इसी प्रकार बहुत देर बात चीत करने के अनन्तर प्रसन्न होते हुए विद्यासागर जी घर चले गये।

परमहंस जी के विवाह के समय उनकी स्त्री की अवस्था केवल ६ वर्ष की थी। ग्यारह वर्ष बाद श्रीरामकृष्ण जी की इच्छा हुई कि ससुराल चलना चाहिये। बस, वे ससुराल जा पहुँचे और बिना पूछे-ताछे घर में घुसते चले गये, आँगन में जा खड़े हुए। उनकी स्त्री इस समय सोलह वर्ष की थी, किसी कार्य में लगी थी। एक अपरिचित मनुष्य को पागल की तरह सामने खड़ा देख चिल्ला उठी—"माँ! देख, कोई पागल घर में घुस आया है।" माँ ने निकल कर देखा। कुछ देर तो पहचान न सकी फिर "यह तो मेरा दामाद है, हाय क्या मेरे भाग्य में यही बदा था?" कहते हुए पृथ्वी पर गिर पड़ी। सचेत होने पर देखा कि रामकृष्ण पूजा की सब सामग्री जुटा कर स्त्री से कह रहे हैं—"आ, इस चौकी पर बैठ।" सहज स्वभाव बाला सरल चौकी पर बैठ गई। परमहंस "माँ, माँ" कह कर उसके चरणों पर पुष्पाञ्जली चढ़ाने लगे और आरती करने लगे। उनकी सास यह दृश्य देख कर उन्हें कटु वाक्य कहने लगी। पर वे पूजा समाप्त कर वहाँ से चले गये।

रामकृष्ण के चले जाने के दो वर्ष बाद उनकी स्त्री ने जो अब तक जानती थी कि मेरा पति पागल है, अब जाना कि वह तो एक असाधारण ज्ञानी पुरुष हैं। निदान एक दिन वह अपनी माता को साथ ले उनके दर्शनों को चल पड़ी और तीस चालीस मील पैदल यात्रा कर दक्षिणेश्वर पहुंची।

परमहंसजी ने उसका बड़ा आदर करते हुए कहा—"तुम्हारा पति रामकृष्ण तो मर गया, यह नवीन रामकृष्ण है, जो संसार की तमाम स्त्रियों को मां समझ रहा है" यह कह कर वे उसके पैरों पर गिर पड़े। स्त्री भी स्वामी के मन का भाव समझ गई, बोली—मेरी भी यही इच्छा है कि मैं अपने को आपके अनुरूप बनाने का प्रयत्न करूं, मैं केवल यही चाहती हूं कि आपकी सेवा और ईश्वर भजन में अपना काल यापन करूं।" वह वहीं मन्दिर में रहने लगी, एक दिन परमहंसजी के एक भक्त ने उसे दश हजार रुपया देना चाहा, पर साध्वी स्त्री ने कहा—मैं इसे क्या करूंगी, मैं तो यथा सम्भव अपने पति का अनुकरण करना चाहती हूं।"

श्रीरामकृष्ण परमहंसदेव के जीवन की ऐसी ही कितनी ही घटनाएं हैं, जिनसे समझ में आ जाता है कि वे ईश्वर के कैसे अनन्य भक्त, धर्मोपदेष्टा और पहुंचे हुए सिद्ध पुरुष थे॥

पुजारोजो।

(ले०, श्री अरुणकुमार चट्टोपाध्याय)

सन्ध्या का समय था। एक क्षुद्र ग्राम के बीचसे हो कर श्रीगंगाजी की पवित्र धारा धीरे धीरे कलकल निनाद करती हुई, असीम की ओर बह रही थी। तट से थोड़ी दूर पर भगवान श्री भोलेनाथ, दीनदयालु महादेवजी के मन्दिर में सन्ध्यारति का घण्टा बज रहा था।

मन्दिर जनपूर्ण था। सब कोई आनन्द मग्न थे और हर्षोत्फुल्ल होकर श्रीमहादेवजी की जय गान कर रहे थे। उसी मन्दिर के एक कोने में एक बालक सिसक-सिसक कर रो रहा था। किसी की दृष्टि उस पर नहीं पड़ती थी। आरती शेष हो चुकी थी। जन-कोलाहल-पूर्ण मन्दिर निस्तब्ध हो गया था। यहां तक कि मन्दिर के वृद्ध पुजारी जी भी कहीं चले गये थे। किन्तु वह बालक उसी तरह पड़ा था। कुछ देर बाद वह सहसा उठा और देवता के सामने हाथ जोड़ कर कुछ अस्फुट प्रार्थना के शब्दों को उच्चारण करके वह वहीं गिर पड़ा। उसका शरीर शीर्ण था। उसका मुह देखने से मालूम होता था कि कई दिनों से उसने कुछ भी नहीं खाया था। उसके विषादक्लिष्ट मुख को देखने से पाषाण का भी वज्र-कठिन हृदय विगलित हो जाता था।

कुछ समय के अनन्तर उस गम्भीर निस्तब्धता को भंग करके मन्दिर के पुजारीजी वहां आ पहुंचे और बालक को मृत समझ कर चौंक पड़े। उनका यह दैनिक कार्य था कि प्रातःकाल गंगास्नान कर अपने नित्यप्रति के कामों में मन निवेश करना और रात को सन्ध्यारति के अनन्तर देवता के मन्दिर का द्वार बन्द कर के उसी मन्दिर से संलग्न अपने वास स्थान में सोना। यह काम वह अनेक वर्षों से करते हैं; किन्तु उनके जीवन में कभी ऐसी घटना घटित नहीं हुई थी। वह चौंक पड़े किन्तु सहसा उनके मन का अन्धकार दूर हो गया। उन्होंने उस बालक को गोद में उठा लिया और निर्मल वायुपूर्ण गंगा तट पर ले गये। वहां पर जल के निकट उसे सुला कर उन्होंने उसके मुखमें जल दिया। जल और वायु के सेवन से उसे थोड़ी देर में ज्ञान का संचार हुआ। उसने आखें खोल कर उठने की चेष्टा की किन्तु दुर्बलता के वश वह असफल रहे। वह चिल्ला उठा "मैं कहां हूं? कौन मुझे यहां लाया?"

पुजारीजो ने स्नेहपूर्ण कण्ठ से आश्वासन देते हुए उससे कहा

"बेटा ! अधीर मत हो । मैं तुम्हें यहाँ ले आया हूं । कोई डर नहीं है । चलो मन्दिर में चलो, सब हाल बतलाता हूं ।" पुजारीजी ने उसे गोद में उठा लिया और दीपालोकित मन्दिराङ्गण में प्रवेश किया । वहां पर एक स्वच्छ स्थान पर बैठा कर पुजारी जी बोले "बेटा ! यहीं ठहरो मैं आता हूं ।" बालक ने मस्तक संचालन पूर्वक सम्मति ज्ञापन की । थोड़ी देर बाद एक दोने में कुछ प्रसादी के फल और मिष्टान्न और एक मृतपात्र में पानी लेकर पुजारीजी आविर्भूत हुए । पुजारीजी ने पास आकर हस्तस्थित वस्तुओंको उसके सामने रख दिया । बालक अपनी शेषशक्ति को एकत्रित करके उठ बैठा । वह पहिले ही पानी पी गया क्योंकि वह तृषित था । फिर किसी अकाल-ग्रसित देश के अधिवासी के समान उन फलों को और मिष्टान्न को खा गया और फिर जल देने के लिये संकेत किया । पुजारीजी ने जलपात्र में से जल दिया । भोजनान्तर कुछ स्थिर होने पर पुजारीजी ने उससे पूछा "तुम्हारा नाम क्या है ? कहाँ रहते हो ? तुम्हारा कोई है या नहीं ?" बालक यद्यपि कुछ स्वस्थ मालूम पड़ता था किन्तु अधिक न कह सका केवल इतना ही बोला कि मेरी माता कल तक मेरे साथ थी किन्तु हाय ! वह आज इस संसार में नहीं है । हाय ! मेरी माता" इतना कह कर वह सिसक सिसक कर रोने लगा और उसके दोनों कपोल अश्रुसिक्त हो गये और वह शोकावेग से वहीं गिर पड़ा । पुजारीजी हाँ ! हाँ ! कर उठे किन्तु सब निस्तब्ध ! वह बालक चिरनिद्रा के क्रोड़ में आश्रय ले चुका था । चिरशान्ति पा चुका था । सब मन्दिर हाहाकार करने लगा ।

सवेरा हुआ । राग रूपी रथ पर आरूढ़ श्रीसूर्य भगवान उदित हुए । लोगों ने देखा कि मन्दिर खुला पड़ा है किन्तु पुजारी जी नहीं हैं । उस बालक के मृत शरीर को लेकर उस घोर अन्धकार रात्रि में पुजारीजी कहाँ चले गये कोई नहीं जानता ।

"सागर के वक्ष पर" ⊛

(स्वामी विवेकानन्द)

नील आकाश में बहते हैं मेघदल,
श्वेत कृष्ण बहुरंग,
तारतम्य उनमें तारल्य का दीखता,
पीत भानु मांगता है विदा,
जलद रागछटा दिखलाते ।
बहती है अपने ही मन से समीर,

गठन करता प्रभंजन,
गढ़ क्षण में ही, दूसरे क्षण में मिटता है,
कितने ही तरह के सत्य जो असम्भव है—
जड़ जीव, वर्ण तथा रूप और भाव बहु ।
आती वह तुलाराशि जैसी,

फिर बाद ही लखो महानाग,
देखो विक्रम दिखाता सिंह,
लखो युगल प्रेमियों को,
किन्तु मिल जाते सब
अन्त में आकाश में ।
नीचे सिन्धु गाता बहु तान,

महीमान किन्तु नहीं वह,
भारत, तुम्हारी अम्बुराशि विख्यात है,
रूप-राग जलमय हो जाते हैं,
गाते हैं यहां किन्तु
करते नहीं गर्जन ।

अनु०—श्रीसूर्यकान्त त्रिपाठी

⊛ दूसरी बार पश्चिम से लौटते समय, स्वामीजी ने यह कविता लिखी थी । शायद इस समय वे भूमध्य-सागर का पूर्वभाग अतिक्रम कर रहे थे ।

वेदों के साथ गीता का सामंजस्य।

(लेखक—शिवशेखर द्विवेदी, विशारद).

हिन्दू जाति के संस्कारों का इतिहास संसार की अन्य जातियों की अपेक्षा अधिक मज़ेदार और आकर्षक है। अत्यन्त प्राचीन होने के कारण हिन्दू-मस्तिष्क इतना दुर्बल हो गया है कि उसे अपने जीवन के पिछले अध्यायों की कुछ खबर नहीं। यदि किसी पाश्चात्य विद्वान ने कुछ ठेस दी—दो-चार खरी-खोटी सुनाई, तो, होश हुआ। वेदों को लेकर, प्राचीनता के साथ साथ हिन्दुओं की सार्वभौमिकता और सर्वज्ञता को हड़प जाने का जो प्रयास पाश्चात्य विद्वानों ने किया था, लोकमान्य की कृपा से वे अपने काम में सफल नहीं हुए। उन्होंने पाश्चात्य तर्क प्रणाली के ही रूप में वेदों की प्राचीनता सिद्ध कर दी। इसी तरह के व्यापार जब तब हिन्दुओं के अन्दर स्वरूप पहचानने की आशा जागरित करते हैं। और तब—

तुलसी जे जस चहत हैं, पर कीरति को खोय।
तिनके मुंह मसि लागि है, मुयेहु न मिटिहै धोय॥

हिन्दुओं के अन्य मन्थों पर भी विदेशी समाज की ऐसी ही आलोचनायें हुई हैं। वेद की प्राचीनता और गीता की उपादेयता हिन्दुओं के गौरव की सबसे बड़ी चीजें हैं। हम इन दोनों के सामंजस्य पर ही एक नजर डालने की कोशिश करेंगे। गीता में वेदों की आलोचना की गयी है।

गीता के दूसरे ही अध्याय में वेदों की आलोचना इस प्रकार होती है—

वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः ॥४२॥

कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम्।
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति ॥ ४३ ॥
भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ॥४४॥
त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ॥४५॥
यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके।
तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥४६॥

यहां पर वेदों के कर्मकाण्ड में वर्णित भाग यज्ञ की निन्दा की गयी है। कारण इस प्रकार के अनुष्ठान समाज में पुत्र-लाभ धन-प्राप्ति आदि के कारण होते हैं। और सब जीवन को वास्तविक रूप से दूर रखने के प्रधान कारण हैं। काम्य बुद्धि से की गयी भक्ति में ईश्वर की प्राप्ति नहीं होती—आकांक्षा की पूर्ति होती है। साधना का श्रम क्षणिक-सुख में ही बीत जाता है। ध्यान रहे यहां पर कर्मों की निन्दा केवल काम्य बुद्धि से सम्बन्ध रखने पर ही की गयी है। क्योंकि आगे चल कर अठारहवें अध्याय में मनःपूत और लोकसंग्रह के निमित्त इन कर्मों की ओर इशारा भी है।

"कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम्।
नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते ॥६॥

मतलब यह कि फलाशा छोड़ कर कर्म करना चाहिये। क्योंकि फलाशा में बन्धन-जटिल होता है और त्याग में मोक्ष। इसीलिये भागवत में भी कहा है।

वेदोक्तमेव कुर्वाणो निःसङ्गोऽर्पितमीश्वरे।
नैष्कर्म्यां लभते सिद्धिं रोचनार्था फलश्रुतिः ॥

बिना इसके सिद्धि नहीं। मोक्षेच्छुकों को निष्काम कर्म करना चाहिये। गीता में इसीका समर्थन किया गया है और वेदों के

कर्मकाण्ड को भी उसी ओर घसीटा गया है। साथ ही कर्मकाण्ड की आलोचना से यह मतलब नहीं कि गीता में सर्वथा वेदों का खण्डन ही अभीष्ट है। भगवान ने वेदों की महिमा में कहा है—

"वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो,

वेदान्त कृद्वेद विदेव चाहम् ॥"

वेदों के साथ गीता का मेल बहुत अधिक है। इसे लक्ष्य कर के ही स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि जो वेदों का मर्म जानना चाहते हैं, उन्हें गीता का पाठ करना चाहिये। कारण, वेदों के पठन-पाठन की प्रणाली निर्दोष नहीं। दूसरे वैदिकयुग की दूरी का हिसाब लगाकर मन, प्राण और शरीर में जो भेद दिखाई पड़ता है, उससे भी साबित है कि ऋषि मुनियों के शब्द-कौशल, व्यवहार-प्रणाली का तथ्यगत-अर्थ समझना या समझाना बहुत मुश्किल है। पाश्चात्य विद्वानों में वेदों पर भाष्य लिखने की लालसा अधिक है। वे अपनी भाषा में देखना चाहते हैं। इसीको लक्ष्य में रखकर स्वामीजी ने कहा था।

वेदों और गीता में इस तरह का कोई साम्य नहीं कि जो कुछ वेदों में है, वही गीता में उठा कर रख दिया गया है। वास्तविक बात तो यह है कि सत्य एक है, अनादि है। युग-युगान्तर में एक ही साथ प्रकाशित होता है। प्रकाश की रीति में परिवर्तन होता है। इसलिये सब देश और सब स्थानों में सत्य का रूप एक ही है। अतएव वैदिक युग के ऋषि मुनियों के उपदेशों का सत्य गीता में भगवान कृष्ण के मुख से स्थापित हुआ। ऋचा, मंत्र और श्लोकों में, उच्चारण में, गान में, अन्तर है ; तत्स्थित सत्य में नहीं। वेदों में अध्यात्मवाद का वर्णन जितना सुन्दर और रहस्य पूर्ण हुआ है, उस तरह का वर्णन बीजरूप से संसार के किसी भी ग्रन्थ में नहीं। उपनिषद-दर्शन-शास्त्रादि की रचना उसी आधार पर है। परन्तु वेदों

में उस अनन्त सत्य का वर्णन जिस रूप से हुआ है, यदि उसे हम सद के लिये मान लें तो ठीक न होगा। समय और देश के अनुसार सभी बातों में अन्तर पड़ता है। गरम देश के रहने वाले स्नान में जितना समय व्यय करते हैं, आचार-विचार करते हैं, सर्द देश में वैसा नहीं हो सकता। गर्म देश का ही व्यक्ति यदि किसी सर्द देश में भेजा जाय तो वह दैशिक रीति कभी भी पालन करने में उत्साह न दिखायेगा। अतएव उपनिषदों का आधार वेद है। इन्हींमें अध्यात्म-ज्ञान का सब से अधिक स्पष्ट आभास हुआ। वेद और उपनिषद् को आधार मान कर गीता की रचना हुई। इसमें समयानुसार सत्य का उचित प्रकाश हुआ। उपनिषद् काल में ही वेदों के कर्मकाण्ड को लेकर खूब विरोध हुआ था। कारण कर्मकाण्ड में दोष आ गया था। गीता में भी इसी लिये वेदों के कर्मकाण्ड की आलोचना हुई। महाभारत काल में तो वैदिक कर्मकाण्ड की विशेष अवनति हुई। शान्ति पर्व में युधिष्ठिर और भीष्म-संवाद में इसका वर्णन बहुत सुन्दर है। गीता में तो निष्काम यज्ञ का सदैव ही समर्थन किया गया है —

यज्ञार्थात् कर्मनोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धना ।

तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्त संग समाचर ॥

इस तरह गीता में कहीं तो कर्म की प्रशंसा है, कहीं ज्ञान की। और कहीं यज्ञों की निन्दा है कहीं प्रशंसा। अतएव गीता सर्वथा असामञ्जस्य पूर्ण जान पड़ती है। पर बात ऐसी नहीं है। इन सबका वर्णन, उनका शब्द संगठन एक विशेष रूढ़ि को लेकर हुआ है। और जब तक उस पर-उसके शब्दों पर-गम्भीर विवेचना नहीं होती, तब-तक अर्थ ज्ञान भी नहीं। क्योंकि गीता का उद्देश्य हमेशा ही इन्द्रिय परायणता को संयत करने की ओर ही है। और इसी निमित्त कहीं वैदिक यज्ञों की निन्दा है कहीं प्रशंसा। जब कोई रीति उच्छृङ्खलता की ओर अग्रसर करती है तो गीता उसका विरोध करती है, अन्यथा

नहीं। गीता में तो बार-बार आया है—"नियतं कुरु कर्मत्वम्" अनियमित अर्थात् निरङ्कुश भाव से कर्म न करो—किसी उच्च वर्ग को सामने रख कर कर्म करो। इसलिये देवियों के बलि प्रदान की प्रणाली हिन्दुओं में है। वे अपनी ऐन्द्रिक-तृप्ति के निमित्त ही भोजन करते हैं। पर देवों को अर्पण करके ही ग्रहण करती हैं। मानसिक उत्कर्ष का यह बहुत ही सुन्दर उदाहरण है।

शक्ति की उपासना।

नवरात्रि आ रही है। हिन्दू इन नौ दिनों में भगवती आद्या-शक्ति की आराधना करेंगे। शक्ति की आराधना बिना किये कभी कोई शक्तिमान हो नहीं सकता। आद्याशक्ति जगज्जननी भगवती की उपासना वैदिक युगों से चली आ रही है। सप्तशती के पाठक आदि और अन्त में देवी सूक्त पाठ करते हैं। ऋषि अम्भृण की कन्या वाक के हृदय में देवी आद्याशक्ति का आविर्भाव हुआ था। वह अपनी अनुभूति से बोल उठी—

> "अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्
> मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे।
> ततो वितिष्ठे भुवनानु विश्वो-
> तामूं द्यां वर्ष्मणोपस्पृशामि॥"

मैंने पिता जी को प्रसव किया है—मैं इन सब लोकों के ऊपर हूं, अर्थात् इन सब का कारण स्वरूप हूं। समुद्रमें जो जल है, वह भी मेरा ही कारण है। इसीलिये मैं सारी दुनिया के भीतर में हूं—बल्कि वह जो दूर में स्वर्ग आदि लोक हैं उन सब में मेरा कारण-रूप देह व्याप्त हो रहा है।

जब किसी के अन्दर उस सर्वशक्तिमत्ता की आभा पड़ती है, तब वह दुनिया में श्रेष्ठ पुरुष कहलाता है और उसके लिये कोई भी कर्म दुःसाध्य नहीं रहता। वह भौतिक या पारमार्थिक जिस समृद्धि सिद्धि को प्राप्त करना चाहता है, प्राप्त कर लेता है। आज इस धर्मक्षेत्र में उस शक्ति की चर्चा के बिना ही जातीय जीवन जाता रहा, हम परवश हो गये, हमारे अन्दर घोर तामसी भाव आ गया है; हम जड़वत् पड़े हैं—जीवित होने का कोई भी लक्षण हमारे अन्दर नहीं है। अपनी शिक्षा दीक्षा खोकर निन्दनीय परानुकरण आज हमारा एक मात्र कार्य हुआ है।

मनुष्य जब आत्मविश्वास गँवा देता है तभी वह अवनति की चरम सीमा पर पहुंच जाता है। शक्ति का उद्बोधन करते समय सब से प्रथम चाहिये, अपने अन्दर विश्वास लाना कि मैं सब कुछ कर सकता हूं।

किसी भी काम को करने के पहले से ही जिस मनुष्य के हृदय में दुर्बलता—इस सन्देह की उत्पत्ति होती है कि शायद ही मैं इस काम को समाप्त कर सकूं—उससे विरले ही काम की सुसमाप्ति होती है। इसीलिये चाहिये अदम्य आत्म-प्रत्यय, गम्भीर आत्म-श्रद्धा—जैसा कि पूर्वकाल में बालक नचिकेता को हुआ था, वैसाही हमारे हृदयों में भी होना अत्यन्त आवश्यक है। इस दृढ़ता के बिना हमारा इस जगत में कुछ कर दिखाना उतना ही असम्भव है, जितना कि अपनी नियमित दिशा को छोड़कर किसी दिन सूर्य का पूर्व से पश्चिम में उदय होना असम्भव है।

आज जाति के इस दुर्दिन में हमें चाहिये कि कायिक, मानसिक और सब से पहले आध्यात्मिक शक्तिचर्चा करें। अध्यात्म के विषय में कोई भी बात कहने से आज कल के नौजवान समझते हैं—यह कोई पारलौकिक बात कह रहा है—जिससे इस जिन्दगी में कोई भी प्रयोजन नहीं है। मृत्यु के बाद क्या होगा कौन जाने?

शायद ही कुछ होने का है—परन्तु अध्यात्म का प्रयोजन परलोक से अधिक इसी लोक में ही है। अध्यात्मविद्या—अपने को सतेज रखती है—मन से दुर्बलता को-भय को—सर्व प्रकार की नीचता को, पशुत्व को नाश कर, शौर्य वीर्य और सर्वशक्तिमत्ता को अपने अन्दर ला देती है। इस जीवन में—इस दुःख से परिव्याप्त संसार में—सच्चे सुख की राह दिखलाती और तभी जीवन का यथार्थ सुख मिलता है। अध्यात्म विद्या का विकाश होने से मुनिकन्या वाक् की तरह आदमी कह सकता है—

अहं रुद्राय धनुरातनोमि
ब्रह्मद्विशरवे हन्त वा उ।
यं यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि
तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधां।

त्रिपुरासुर ने सब देवताओं को जब स्वर्गधाम से मार भगाया, तब मैंने ही भगवान रुद्र के धनुष का विस्तार किया था, उसीसे उस असुर का नाश हुआ। ब्रह्मविद्वेषी त्रिपुरासुर की नाशकर्त्री मैं ही हूं। इस संसार में मैं चाहे जिसे बड़ा कर सकती हूं—मनुष्य को मैं ब्रह्मा के पद पर बिठा सकती हूं, ऋषि बना सकती हूं—अति-प्राज्ञ मेधा सम्पन्न विद्वान् बना सकती हूं।

प्राचीन काल में एक बालिका के अन्दर इतनी शक्ति आ गयी थी। क्या आज ऐसा होना असम्भव है? लोग कहते हैं—अविश्वासी विशेष कर कहते हैं—पौराणिक बातें लाकर वृथा समय नष्ट करना अनुचित समझते हैं—एक तो ऐसा होना सरासर असम्भव है और दूसरे यह है कि जो काम देवताओं के लिये सम्भव है वह आदमी नहीं कर सकता—क्योंकि देवता मनुष्यों की अपेक्षा कहीं अधिक शक्ति सम्पन्न होते हैं। इस स्थान पर एक बात की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षण करना चाहता हूं कि देव शरीर भोग शरीर है—जीवों की

श्रेष्ठ कल्याण मुक्ति के लिये देवताओं को भी मनुष्य देह धारण करना पड़ता है। इस कारण से मनुष्य देवों से भी श्रेष्ठ हैं।

लेकिन बात तो और ही है—एक अंग्रेज का लड़का या लड़की दुनिया में चाहे जहां रहे उसे इस बात का—इस आत्म-प्रत्यय का—पूरा ख्याल रहता है कि मैं अंग्रेज हूं—मुझ में दुर्बलता, भीरुता निन्दनीय है—अगर मैं उन सब अवगुणों से जड़ित हो गया, तो लोग मुझे अंग्रेज नहीं कहेंगे और अंग्रेज के लिये इस से बड़ी निन्दा की और कोई भी बात हो नहीं सकती। क्या हम भी अपना परिचय दुनिया के सामने नहीं रख सकते? हमारे लिये क्या सब गयी बीती बात हो गयी? शूरता, वीरता, सत्यभाषण, आदि आदि महत् गुणों का परिचय हम जैसा पूर्व काल में दे चुके हैं, वैसा ही अब भी दे सकते हैं। ऐसा विश्वास अपने अन्दर लाने से ही काम आरम्भ हो जावेगा। सिंह सन्तान चाहे जैसी भानुमती की माया में गिरती जाय जब उसकी माया टूटती है, वह पुनः सिंह ही बनती है, शृगालत्व उसमें आ नहीं सकता।

जागो भारत सन्तान! मोह निद्रा त्याग कर, इस शुभ अवसरपर सर्व शक्तिमयी की आराधना करो, माता से प्रार्थना करो :—

देवि प्रचण्ड दोर्दण्ड—दैत्य दर्पनिसूदिनि।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि॥

—स्वामी विजयानन्द।

मणिमाला।

यदि नम्रता या विनय से काम लिया जाये, तो आदमी साधुओं से उन गुप्त तत्त्वों को प्राप्त कर सकता है, जिन्हें वे कभी जबान पर नहीं लाते। —गोस्वामी तुलसीदास।

यदि तुम में सत्यता या वीरता का भाव नहीं हो और अपनी सन्तान में तुम इसकी झलक देख पाते हो, तो उसे परिस्फुट होने दो— उसका उपमर्द न करो। —महात्मा गान्धी।

जो काम तुम कर चुके हो, उसके विषय में कुछ कहना व्यर्थ है ; जो काम तुमने एक बार अच्छा समझ कर आरंभ कर दिया है, उसे नहीं करने की इच्छा करना व्यर्थ है ; और जो बात हो चुकी है, उसमें दोष ढूंढना व्यर्थ है। —कानफ्युसियस।

पैसे खर्च कर जब हम करुण रसात्मक नाटक देख कर लौटते हैं, तब उसकी उत्तेजना रङ्ग-भवन के द्वार से बाहर आते ही आते शान्त हो जाती है ; क्योंकि वह कृत्रिम होती है। परन्तु यदि कभी अपने पैसे किसी भूखे को खिलाने में हम खर्च करते हैं, तो उससे हमें जो आनन्द प्राप्त होता है, वह जीवन भर स्मरण रहता है। —रूसो।

युद्ध में विजय प्राप्त करने और भलीभांति शासन करने के लिये विभिन्न प्रकार की योग्यताओं की आवश्यकता होती है। परन्तु संहार-कार्य जितना ही सहज है, निर्माण-कार्य उतना ही कठिन। संहार शीघ्र किया जा सकता है ; पर निर्माण समय-साध्य है। —नेपोलियन।

विश्व के पुस्तकालय से हमने चार वाक्य छांट निकाले हैं, जिनमें से दो याद रखने योग्य हैं और दो भूल जाने योग्य। ईश्वर और मृत्यु को सदा याद रखना चाहिये। तुम किसी की भलाई करो और जो कोई तुम्हारी किसी तरह की बुराई करे, उसे भूल जाओ। —लुकमान।

हमारी त्रुटियां।

जब हम इस बात का विचार करते हैं कि हमारे आन्दोलन सफल क्यों नहीं होते, तब हमें अपने कार्यों में कितनी ही त्रुटियां मालूम होती हैं—(१) कार्यकर्ता जब आन्दोलन करते हैं, तब उसमें कुछ सफलता प्राप्त होने से ही वे समझ लेते हैं कि हमारा कार्य समाप्त हो गया। (२) किसी प्रकार के विघ्न उपस्थित होने पर उससे हताश हो जाते हैं और सफलता पर पूर्ण विश्वास रख कर पूर्ण उत्साह के साथ कार्य को जारी न रख कर बीच में ही उदासीन बन जाते हैं। (३) नेता बनने के लिये बहुत लोग तैयार हो जाते हैं, परन्तु उनमें सची लगनवाले, कष्ट सहिष्णु और स्वार्थ त्यागी नेताओं का प्रायः अभाव रहता है। (४) कितने ही लोगों में अभिमान की मात्रा बहुत अधिक रहती है और उनके हृदय अनुदार होते हैं। (५) कर्णधार बननेवाले लोग यह चाहते हैं कि प्रत्येक कार्य हमारी इच्छानुसार ही हो, यदि किसी की इच्छा के विरुद्ध कोई कार्य होता है तो वह उससे पृथक हो जाता है। (६) धनी लोग कार्य कर्ताओं का या उनकी बात का सम्मान नहीं करते। (७) बहुत से शक्ति सम्पन्न लोग इस खयाल से उदासीन बने बैठे रहते हैं कि हमारा क्या हानि-लाभ है और इस बात का विचार नहीं करते कि समाज के वातावरण के दूषित हो जाने से उसका विषम फल हम को या हमारी सन्तानों को भी भोगना पड़ेगा। (८) लोग अपने दोषों को नष्ट कर निर्दोष बनने की चेष्टा नहीं करते। (९) धनी और निर्धनों का भेदभाव रहने के कारण से पारस्परिक प्रेम सद्भाव और विश्वास की कमी रहती है। जब तक हमारे अन्दर उक्त त्रुटियां विद्यमान रहेंगी, तब तक हमारे आन्दोलन सफल नहीं हो सकते। इसलिये समाज हितैषियों को उक्त त्रुटियों को दूर करने के लिये प्रयत्न शील होना चाहिये।

पुस्तक-परिचय।

कल्याणका गीताङ्क।

हिन्दी में प्रकाशित होनेवाले उच्च कोटि के मासिक साहित्य में "कल्याण" का विशेष स्थान है। थोड़े दिनों में ही इसने जो उन्नति कर ली है वह इसके उपयोगी होने का प्रमाण है। अन्यान्य विशेषताओं के सिवा "कल्याण" की एक विशेषता विशेषाङ्कों का प्रकाशन है। इसमें भी प्रसन्नता की बात यह है कि प्रत्येक विशेषाङ्क अपने पहले विशेषाङ्कों से बाजी ले जाता है। हाल में ही सहयोगी का जो गीता-विशेषाङ्क प्रकाशित हुआ है वह 'कल्याण' के अन्य सब विशेषाङ्कों से तो बढ़कर है ही, साथ ही, हमारी सम्मति में, कई दृष्टियों से वह अब तक प्रकाशित अन्य सब पत्रिकाओं के विशेषाङ्कों से भी बाजी ले गया है। इसमें लगभग २५० लेख और कविताएं हैं। १७० सादे और रंगीन चित्र हैं। चित्र सभी सुन्दर हैं, पर गीता-उपदेश का चित्र बहुत ही सुन्दर है। लेखों में आचार्य ध्रुव का 'श्रीमद्भागवतगीता बीजशति कीलक' लेख अति गम्भीर ज्ञान से पूरित है। इसके सिवा काका कालेलकर, श्री जयदयालजी गोयनका, श्री अरविन्द घोष, श्री कन्नोमल, श्रीबिपिनचन्द्रपाल, पण्डित विष्णुशास्त्री बापट, देवर्षिरमानाथ जी आदि के लेख भी ज्ञान वर्धक सामग्री से भरपूर हैं। कई लेख ऐसे हैं जो जुदे-जुदे सम्प्रदायों के सिद्धान्तों को दृष्टि में रख कर लिखे गये हैं। लेखों के संग्रह में साम्प्रदायिकता की गंध भी नहीं आने पायी है। जिन्हें गीता से प्रेम है धीरे धीरे इस सुवृहत गीता साहित्य भण्डार से लाभ उठा कर अलौकिक रत्नों से मालामाल हो सकते हैं। इतने बड़े विशेषाङ्क का मूल्य २।।) रु० कुछ न होनेके बराबर है। 'गीताङ्क' की सफलताके लिये हम उसके सम्पादक श्री बाबू हनुमान प्रसादजी पोद्दार को हृदय से बधाई देते हैं।

विविध विषय।

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वृन्दावन।

१९२९ में इस आश्रम का २२ वर्ष समाप्त हुआ। इस वर्ष केवल दवा लेने तथा आश्रम में रह कर चिकित्सा कराने वाले, दोनों प्रकार के रोगियों की संख्या पिछले वर्षों से अधिक थी।

आश्रम में रख कर २७० रोगियों की चिकित्सा की गई। इनमें २२९ तो अच्छे हो गये, ३३ की मृत्यु हो गई। चार ने बिना आराम हुए ही अस्पताल छोड़ दिया और बाकी चार साल के अन्ततक आराम नहीं हुए थे। केवल दवा लेनेवालों की संख्या ३१२९१ थी, जिनमें १००४६ नये और २१२४५ पुराने थे। इस वर्ष विसूचिका (हैजा) के लिये आश्रम में अलग विभाग खोल दिया गया। इसके लिये जो भवन बनाया गया है, उसका कुल खर्चा बेलगछिया विल्ला की रानी वसन्तकुमारी दासी और रानी सतरूपा दासी ने दिया है।

चिकित्सा सम्बन्धी सहायता के अतिरिक्त आश्रम आर्थिक सहायता भी दिया करता है। इस वर्ष पांच पर्दानसीन कुलीन असहाय स्त्रियों को १०७ दिये गये। आश्रम की वर्तमान आवश्यकतायें निम्नलिखित हैं :—

१—अभी तक केवल स्त्रियों को आश्रम में रखकर चिकित्सा करने के लिये आश्रम के पास एक मकान है पर परिस्थिति लाचार करती है कि उसमें पुरुष भी रखे जायें। इसलिये पुरुषों की चिकित्सा के लिये भवन बनाना आवश्यक है। इस भवन के बनाने में कोई सात हजार रुपये लगेंगे।

२—औषधि वितरण के लिये एक भवन की आवश्यकता है। जिसमें चीर फाड़ के लिये एक अलग बड़ा कमरा हो तथा होमियोपैथी और एलोपैथी दवायें बाटने के लिये भी अलग अलग कमरे चाहिए। इस भवन को बनाने में कोई दस हजार रुपये लगेंगे।

३—रोगियों के साथ उनके सम्बन्धी भी आते हैं, इन्हें ठहरने के लिये एक अतिथिशाला की आवश्यकता है। इसके निर्माण में कोई छः हजार रुपये लगने की सम्भावना है।

४—दमा के छः रोगियों को रखने के लिये एक अलग कमरे की आवश्यकता है। इस कमरे को बनाने में दो हजार रुपये लगेंगे।

५—आश्रम की रक्षा के लिये एक दीवाल तथा स्थानीय लोगों के स्नान करने के लिये जमुना तट पर एक घाट बनवा देना भी किसी प्रकार कम आवश्यक नहीं है, इसके निर्माण में भी कोई दस हजार का खर्च है।

आश्रम की मासिक आय कुल तीन सौ ही है। जिससे इतना अधिक दैनिक खर्चा चलना ही भलीभांति सम्भव नहीं होता। काम को स्थायी बनाने के लिये यह नितान्त आवश्यक है कि आश्रम का एक अच्छा स्थायी कोष हो।

जो सज्जन अपने किसी प्रिय सम्बन्धी या मित्र की स्मृति को चिरस्थायी करना चाहते हों, वे एक हजार रुपये की लागत का एक कमरा बना सकते हैं अथवा पूर्वोक्त आवश्यकताओं में से किसी एक की पूर्ति कर सेवा आश्रम के अभाव को दूर करने के साथ ही अक्षय कीर्ति और पुण्य के भागी बन सकते हैं।

हमारी एकान्त अभिलाषा है कि उदार हृदय धनी मानी सज्जन आश्रम को आर्थिक सहायता देकर उसे कार्य क्षेत्र में अग्रसर होने के लिये उत्साहित करें।

सहायता की रकम चाहे वह कितनी छोटी क्यों न हो, निम्न-लिखित पते पर सधन्यवाद स्वीकृत होगी :—

१—अध्यक्ष रामकृष्ण मिशन, पोष्ट बेलूड़मठ ; जिला हवड़ा।

२—अवैतनिक मंत्री, रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वृन्दावन।

समन्वय

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥ —गीता।

वर्ष ८] सौर आश्विन, सम्वत् १९८९ [अङ्क ९

श्रीरामकृष्णवचनामृत।

(६)

सन्ध्या हो गई। बलराम के बैठकखाने और बरामदे में चिराग जल गये। श्रीरामकृष्ण संसार की माता को प्रणाम करके अंगुलियों में बीज-मंत्र का जप कर मधुर स्वर से नाम ले रहे हैं। भक्तगण चारों ओर बैठे हुए हैं। वह मधुर नाम सुन रहे हैं। गिरीश, मास्टर, बलराम, त्रैलोक्य, और दूसरे बहुत से भक्त अब भी बैठे हुए हैं। "केशव चरित" ग्रन्थमें संसार के लिये श्रीरामकृष्ण के मत-परिवर्तन की जो बात लिखी है, त्रैलोक्य के सामने वह प्रसंग उठाने के लिये भक्तों ने निश्चय किया। गिरीश ने श्रीगणेश किया।

वे त्रैलोक्य से कह रहे हैं—"आपने जो यह लिखा है कि संसार के सम्बन्ध में इनका (श्रीरामकृष्ण का) मत बदल गया है, वास्तव में बात वैसी नहीं, इनका मत परिवर्तित नहीं हुआ है।"

श्रीरामकृष्ण (त्रैलोक्य और दूसरे भक्तों से)—इधर का आनन्द मिलने पर फिर संसार नहीं सुहाता। ईश्वर का आनन्द मिल गया तो संसार अलोना जान पड़ता है। शाल के मिलने पर बनात नहीं अच्छी लगती।